हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

बारहवाँ भाग । अंक ४-५.

जैनहितैषी ।

अप्रैल, मई १९१६. चैत्र वैशाख २४४२.

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहे कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
वैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

जैनधर्म और जैनजातिके भविष्यपर एक दृष्टि* ।

लेखक, श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी ।

'जैनधर्म अनादि है,' यह बात हम लोग बहुत अभिमानके साथ कहते आये हैं; किन्तु जनसाधारण इसका विश्वास नहीं करते थे और न हममें इतनी सामर्थ्य-ही थी कि इसको प्रमाणित कर देते । खैर, हमारे सौभाग्यसे कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया और उन्होंने प्रमाण ढूँढ निकाले; जिनका परिणाम यह हुआ कि आज सब कोई यह बात मानते हैं कि जैनधर्म वास्तवमें बहुत ही प्राचीन और स्वतंत्र धर्म है और यह अनेक शताब्दियोंकी सहयोगिता और अत्याचारोंके होने पर भी आज तक जीवित है । इस बातसे कौन ऐसा जैनधर्मानुयायी है जिसका हृदय आनंदसे परिपूर्ण न हो जावे ।

किन्तु इस पिछले गौरवसे हममें यह भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए कि दूसरे धर्म, और दूसरी जातियाँ—जो हमारा अपेक्षा बहुत आधुनिक हैं—इस योग्य ही नहीं कि हम उनसे कुछ सीख सकें । क्योंकि अतीत

* लेखक महाशय इस लेखको पहले इलाहाबादके लीडरमें और अँगरेजी जैनगजटमें प्रकाशित करा चुके हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालमें हम चाहे जो रहे हों, उस समय हमारा ज्ञान, हमारा बल, हमारा ऐश्वर्य चाहे कितना ही अधिक क्यों न रहा हो इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि आज हमारी दशा बहुत ही गिरी हुई है—आज हमारी गणना संसारकी उन्नत जातियोंमें न सही, साधारण जातियोंमें भी नहीं है। हमारा नाम लेते ही सबसे पिछड़ी हुई जातियोंका ध्यान आता है। अपने पूर्ववैभवको याद करके तो हमें कुछ लज्जा आजानी चाहिए! क्या हम उसी जैनधर्मके अनुयायी हैं? क्या उसी जैनजातिकी सन्तान हैं? क्या हम इस योग्य हैं कि जैन कहलावें? उन पिछले दिनोंके ध्यानसे तो हममें यह इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए कि जरा वर्तमान दशा पर विचार करें और वे उपाय ढूँढ़ें कि जिनसे हम पुनः अपने वास्तविक स्थान पर—उस उच्चआदर्श पर—पहुँच सकें। यही नहीं—यह बात तो ऐसी है कि जिसके कारण हमारे हृदयोंमें ऐसा उत्साह भर जाना चाहिए कि तन मन धनसे ऐसा प्रयत्न करें कि जिसमें हमारी सब त्रुटियाँ दूर हो जायँ, संसारकी जातियोंमें हमारी भी कुछ पूछ हो।

कुछ ऐसे ही विचारसे यहाँ जैनोंकी वर्तमान दशाका विचार करनेका इरादा किया गया है; किन्तु एक ही लेखमें इस सम्बन्धी सब बातोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं, इस कारण यही ठीक समझा गया है कि इस लेखमें केवल एक ही बात पर विचार किया जाय। जैनसमाजमें कितने मनुष्य हैं? वे घट रहे हैं या बढ़ रहे हैं? घटीके कारण क्या हैं? क्या उपाय हो सकते हैं कि जिनसे वे कारण दूर किये जा सकें? इत्यादि प्रश्नोंका ही उत्तर देना इस लेखका उद्देश्य है।

जैनोंकी संख्या दिन प्रतिदिन घट रही है। यह बात प्रायः सबको ज्ञात है और इसे जान लेनेके लिए अधिक परिश्रमकी भी आवश्यकता नहीं। सन् १९११ की मनुष्यगणनामें उनकी संख्या १२, ४८, १८२ पाई गई थी। कुछ शताब्दियों पहले कहा जाता है कि प्रायः सारा संसार जैनधर्मानुयायी था। खैर, इतनी पुरानी बातसे घट बढ़का अंदाजा करना उचित नहीं; परन्तु सन् १९०१ और १८९१ के अंकोंसे वर्तमान संख्याकी तुलना करना कोई अनुचित बात न होगी।

इससे स्पष्ट होता है कि १९०१-१९११ में ६.४ प्रतिशत और १८९१–१९०१ में ५.८ प्रतिशत जैन घट गये। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इन्हीं वर्षोंमें समस्त भारतवर्षकी जनसंख्या घटी नहीं है वरन् बहुत बढ़ी है। १८९१–१९०१ में ·९ प्रतिशत और १९०१–१९११ में ११.८ प्रतिशत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह तो हुई सारे भारतकी बात—पृथक् पृथक् प्रदेशोंकी जैनसंख्याका ह्रास इससे भी अधिक डरावना है। मनुष्यगणनासे पिछले दस वर्षोंमें संयुक्त प्रदेशमें सैकड़ा पीछे १०. ९ पंजाबमें ६. ४ बम्बईमें ८. ६ मध्यप्रदेशमें २२ और बड़ोदेमें १० जैन कम हो गये। ग्वालियर राज्यमें यह घटी सैकड़ा पीछे २६ हो गई है और खास ग्वालियर नगरके समीप तो १०० मनुष्योंमें केवल ७० ही बच रहे हैं। यदि एक एक नगर और ग्रामका हिसाब देखें तो ऐसे बहुतसे स्थान मिलेंगे जहाँ दशवर्ष पहले सौ कुटुम्ब निवास करते थे और अब केवल २ या ३ ही बाकी बच गये हैं। मध्यप्रदेश और मध्यभारतमें ऐसी अनेक जैनजातियाँ हैं कि जिनकी जनसंख्या सहस्रोंसे घटकर सैकड़ों पर रह गई है और सैकड़ोंके स्थानमें अब केवल इने गिने २–४ मनुष्य ही जिनमें बच रहे हैं।

किन्तु ये तो वे बातें हैं जो सरकारी मनुष्यगणनाकी रिपोर्टोंमें लिखी हैं। यदि हमें जैनजातिकी इस घटीका ठीक ठीक पता लगाना है तो इन संख्याओं ही पर निर्भर न रह कर विचारशक्तिसे भी काम लेना चाहिए। एक बातका विशेष ध्यान रखना होगा—वह यह कि गत मनुष्य-गणनाके पहले एक बहुत जोरदार आन्दोलन जैनजातिमें प्रारम्भ हुआ था जिसमें समस्त जैनियोंसे यह प्रार्थना की गई थी कि वे अपनेको हिन्दू न लिखवा कर जैन लिखवावें और सरकारी कर्मचारियोंको भी इस विषयकी खास हिदायत थी। इस आन्दोलनकी आवश्यकता यों हुई थी कि पहलेकी मनुष्यगणनाओंमें बहुतसे जैन हिंदुओंमें गिने गये थे और इस कारण जैनोंकी वास्तविक संख्याका ठीक ठीक अन्दाज नहीं लग सकता था। इस ही बातसे स्पष्ट है कि १८९१ और १९०१ में जैनोंकी संख्या रिपोर्टमें जितनी लिखी है उससे कहीं अधिक थी; किन्तु १९११ की संख्यामें अधिक अन्तर या गलती नहीं हो सकती। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे हुए अंकोंसे जैनोंकी जो घटी प्रगट होती है वह ठीक नहीं, वास्तवमें वह बहुत अधिक होगी। खैर, इस समय कोई उपाय ऐसा नहीं कि जिससे यह गलती सुधार ली जाय और इस कारण हम इन अंकों ही पर विचार करेंगे।

सब बातोंका विचार कर यह जान पड़ता है कि जैनोंकी संख्या प्रतिदशवर्षमें प्रायः एक लाखसे अधिक घट जाती है। यदि यही दशा रही और जैनजातिने अपने इस मरणोन्मुख कलेवरकी स्थितिका कोई अच्छा उपाय ढूँढ़ न निकाला तो प्रायः एक ही शताब्दिमें वह सर्वथा विलुप्त हो जायगी, यह समझ लेना कोई कठिन कार्य नहीं। तिस पर यदि हम यह स्मरण रक्खें कि एक छोटी जाति—जिसमें प्रवेशका द्वार बंद हो—बड़ी जातिकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे नाशको प्राप्त होती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है- तो यह समय और भी कम हो जायगा। किन्तु इस विचारके द्वारा हमें अपने आशंका-पूर्ण भविष्यको अधिक भयानक बनानेकी आवश्यकता नहीं।

इस प्रश्नपर हम दूसरे प्रकारसे भी विचार कर सकते हैं। यह घटी वास्तविक नहीं है। क्योंकि इसके हिसाबमें यह समझा गया है कि भारतकी जनसंख्या बढ़ी नहीं, अथवा यों कहिए कि यदि जैनोंकी संख्या १९११ में भी वही होती जो १९०१ में थी तो उस हिसाबके अनुसार कोई घटी न मालूम पड़ती; किन्तु यह ठीक नहीं। क्यों कि जब स्वास्थ्यका सरकारको और जनताको अधिक ध्यान होने लगा है, जब शान्ति अधिक अधिक फैल रही है, जब शिक्षाका प्रचार उत्तरोत्तर अधिक वेगसे हो रहा है, जब व्यापार आदिमें दिनों दिन उन्नति होती जाती है और इस कारण जनताकी आर्थिक दशा भी उन्नतिके पथ पर है तो यह हो नहीं सकता कि जनसंख्या न बढ़े-और हम देखते भी हैं कि १९०१-१९११ तक समस्त भारतवर्षकी जनसंख्या सैकड़ा पीछे ११·८ बढ़गई है। क्या जैनोंकी संख्या भी ११·८ प्रति शत न बढ़नी चाहिए थी? किन्तु वे तो ६·९ प्रतिशत घट गये। अतः स्पष्ट है कि जैनोंकी कमी वास्तवमें १८·३ प्रतिशत हुई और सो भी जब कि पिछले वर्षोंमें जो जैन हिन्दू लिखे गये वे हिसाबमें न जोड़े जायँ।

परन्तु हम बहुत बड़ी भूल करेंगे यदि हम यह समझें कि जैनोंको भारतकी औसतके अनुसार प्रतिशत ११.८ ही बढ़ना चाहिए था। भारतमें प्रत्येक पाँच मनुष्योंमेंसे चार कृषिसे पेट भरते हैं और भारतीय कृषकोंकी दशा कैसी है इस भयंकर दुःखपूर्ण कथाके कहनेका न हमें साहस होता है और न वह किसीसे छिपी है। दुर्भिक्षने-प्रति वर्षके दुर्भिक्षने-उन्हें सर्वथा निर्जीव कर रक्खा है और इसके अतिरिक्त उनकी निर्धनताके, उनके भूखों मरनेके अनेक कारण हैं जिन्हें प्रायः सब ही विचारशील भारतवासी जानते हैं, उनके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं। इतना ही कह देना बस होगा कि जब लाखों करोड़ों उनमें ऐसे हैं कि जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि दिनमें दूसरी बार भोजन करना किसे कहते हैं तो उनकी संख्याकी वृद्धि अधिक कैसे होसकती है? अतः यह विचारना सर्वथा युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कृषकोंको छोड़ अन्य भारतवासियोंकी संख्या बहुत अधिक बढ़ी है। किन्तु सबका औसत लगानेपर किसानोंकी बुरी दशाके कारण ११.८ प्रतिशत ही रह गई है।

किन्तु जैनाजति तो अधिकतर व्यापार ही करती है। उस पर अच्छी और बुरी फसलका उतना अधिक असर नहीं होता, दुर्भिक्षसे भी वह अधिक पीड़ित नहीं होती, वह निर्धन और भूखी भी नहीं है। उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणना तो भारतवर्षकी सबसे अधिक धनाढ्य जातियोंमें है। मद्यपान और मांसभक्षणकी बुरी आदतोंसे स्वास्थ्यको जो हानि होती है उससे भी वह मुक्त है। अतः कोई कारण नहीं देख पड़ता कि जिससे जैनोंकी दशा भी भारतीय निर्धन कृषकोंकीसी रहे अथवा उन्हें भी उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़े जिनके कारण बेचारे कृषकोंको कालके गालमें जाना पड़ता है। कोई कारण नहीं कि उनकी संख्याकी वृद्धि केवल औसत मात्रही हो और औसतसे बहुत अधिक न हो। इस प्रकार विचार करनेपर हमारी क्षति और भी अधिक मालूम होती है और जिस १८.३ प्रतिशतकी घटीसे हम घबड़ा उठे थे वह वास्तवमें २५ प्रतिशत होकर हमारे रोंगटे खड़े कर देगी; किन्तु इस डरसे इस विचारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि मरणोन्मुख जातिको सर्वनाशसे बचाना हमें अभीष्ट है तो इन बातोंको ध्यानपूर्वक विचारकर भलीभाँति समझ लेना होगा। दश वर्षमें जैनजातिका चतुर्थांश नाश होगया और वह भी इस हिसाबसे। यदि पिछली मनुष्यगणनाओंमें जैनजातिकी संख्या वास्तविक होती तो न जाने यह घटी कितनी हो जाती! क्या जैनजातिके मुखिया लोग इस ओर ध्यान देंगे? क्या जैनधर्म पर न्योछावर हो जानेकी डींग मारनेवाले सेठ लोगोंकी आँखें खुलेंगी? क्या भोले भाले समाजसे आदर सत्कार और भेंटके लोलुपी पंडितोंको अपने कर्तव्यका ध्यान आवेगा? क्या आधुनिक बाबूमंडल इस जीवन मरणके प्रश्नको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना छोड़ देगा? अनादि जैनधर्मका अतीत गौरव, उसके बहुमूल्य सिद्धान्त और जैनजातिकी धनाढ्यता ये सब बातें कुछ भी काम न आवेंगी। इनके द्वारा नाश नहीं रोका जा सकता। यदि उनके हृदयोंमें इस पवित्र धर्मकी उन्नतिके लिए प्रेम और उत्साह बाकी है, यदि उन्हें इस बातका कुछ भी ध्यान है कि उन महान् आचार्योंकी कृतियाँ और उपदेश संसारमें स्थित रहकर सदा मनुष्योंका कल्याण करते रहें, यदि उन्हें कभी यह इच्छा होती है कि पृथ्वीपरसे जैनजातिका नाम न मिट जाय, तो समय आगया है कि जब वे इस प्रश्नपर विचार कर ऐसे उपायोंका ढूँढ़ना ही अपना परम धर्म समझें कि जिनसे हमारा ह्रास रुक जाय और हम मृत्युके पथसे हटकर पुनः सजीवताकी ओर अग्रसर हो सकें। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि इस समय मंदिर बनवानेमें, पूजाव्रत आदि करनेमें, और शास्त्रोक्त कठिनसे कठिन तपस्याओंके करनेमें उतना धर्म नहीं है जितना इस नाशको रोकनेके उपाय करनेमें है। यही नहीं मैं तो यहाँतक कहूँगा कि जो इस ओर कुछ कार्य कर सकते हैं किन्तु करनेमें आलस्य करते हैं, अथवा शास्त्रोंकी आज्ञाओंका मिथ्या बहाना बनाकर उन्नतिके कार्योंसे पीछे हटते हैं उनकी पूजामें, उनकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्तिमें, और उनके व्रतोंमें भी उन्हें महान् पापका बंध होता है।

इतना जान चुकने पर यह आवश्यक होगया है कि अब उन कारणोंपर विचार किया जाय कि जिनके द्वारा हमारी यह बुरी दशा हुई है। सरकारी रिपोर्टोंमें निम्न लिखित ४ कारण लिखे हैं:—

१ प्लेग,
२ हिन्दुओंमें मिल जाना,
३ आर्यसमाजी हो जाना,
४ नाशमान धर्म।

हम इन पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

१ प्लेग—पिछले दश वर्षोंमें प्लेगका अधिक जोर रहा और उसके कारण बहुत-से मनुष्योंकी मृत्यु हुई। यह सच है परन्तु सब ही जातिओंके लिए—कोई कारण नहीं कि प्लेगने दूसरी जातियोंकी अपेक्षा जैन जातिको ही अपना शिकार बनाना अधिक पसंद किया हो। अधिक संभव तो यह है कि जैनों पर इस बीमारीका औरोंसे कम असर हुआ हो; क्योंकि वे अधिक धनवान् हैं और हमारे अन्य गरीब भाइयोंकी अपेक्षा वे अधिक स्वस्थ स्थानोंमें निवास करते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय तो भी २५ प्रतिशतका बहुत थोड़ा भाग भी प्लेगके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता और सच पूछिए तो भारतकी औसत वृद्धि ११. ६ प्रतिशतमें ही प्लेग महाराजका प्रभाव गर्भित है।

२ हिन्दुओंमें मिलजाना—सामाजिक रीति रिवाज जैनोंको और हिन्दुओंको आपसमें मिला देते हैं। यह तो बहुत अच्छी बात है और इससे तो हमें इस बातका बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है कि धार्मिक अन्तर होने पर भी सामाजिक कार्योंमें दो जातियाँ मिल सकती हैं। उनके लिए धार्मिक भिन्नता सामाजिक-मिलन असंभव नहीं बनाती। किन्तु यह बात तो शताब्दियोंसे चली आई है और ऐसा तो मालूम नहीं होता कि इन पिछले दश वर्षोंमें ही कोई ऐसी विशेष बात हुई हो कि जिसके कारण जैनोंने जैनधर्म छोड़कर हिन्दू-धर्म ग्रहण कर लिया हो। वरन् जैसा पहले लिखा जा चुका है १९११ में तो १९०१ की अपेक्षा अधिक जैन हिन्दू न लिखे जाकर जैन लिखे गये थे। और यदि यह भी मान लिया जाय कि सामाजिक मेल इन दिनों बढ़ गया है तो भी यह कदापि ठीक नहीं कि इस मेलके कारण लोग अपना धर्म छोड़ देते हों। कमसे कम युक्त-प्रान्त और पंजाबमें तो ऐसा नहीं होता और यहीं ऐसा सामाजिक मेल अधिक प्रचलित है।

३ आर्यसमाजी हो जाना—इससे कदाचित् जैनसमाजका हृदय बहुत दुखेगा; किन्तु यदि निष्पक्ष होकर विचार किया जाय तो यह बात बहुत स्वाभाविक जान पड़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युक्त-प्रान्त और पंजाबमें बहुतसे जैन आर्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाजी हो गये हैं; परन्तु प्रश्न—वास्तावके प्रश्न—यह है कि क्यों हो गये? कारण ढूँढ़ लेनेमें कोई कठिनाई नहीं। यदि हम अपने ऐबोंको छुपाना न चाहें तो कहना होगा कि इसका कारण यह है कि जैनोंमें सुधार और उन्नतिका मार्ग सर्वथा बंद है। मनुष्य समाजका भलाकर भाइयोंको उन्नत करनेकी अभिलाषाको सन्तुष्ट करनेके जो १००० वर्ष पहलेके उपाय हैं उन्हें छोड़कर आप सामाजिक सुधार शिक्षणसम्बन्धी कार्य आदि चाहे जो कार्य करनेको उद्यत होजाइए, जैनसमाज आपके कार्यको अच्छा नहीं समझेगा और पग पग पर आपके मार्गमें विघ्न उपस्थित करना अपना धर्म समझेगा। एक नवयुवक अपरिमित उत्साहसे पूर्ण होकर अपने भाइयोंके लिए, अपनी मातृ-भूमिके अर्थ, भारतकी नीच जातियोंके उत्थानके कार्यमें अपना जीवन समर्पण कर देना चाहता है; सहसा समस्त जैन जाति उसके विरुद्ध सशस्त्र आ उपस्थित होती है। तब उसके लिए और कोई उपाय बच नहीं रहता सिवाय इसके कि वह जैन जातिको अंतिम प्रणाम कर किसी ऐसे समाजमें जा मिले जहाँ उसकी उच्चतम आशायें और उच्चतम विचार अधिक सरलतासे फलीभूत हो सकें और इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आर्यसमाज ऐसा ही समाज है—उसमें सम्मिलित होकर वह यही नहीं इनसे भी अधिक साहसके कार्य सरलतापूर्वक कर सकता है। इस बातके लिए आर्यसमाजकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। और यदि हम भारतवासी यह न मानें कि उत्तरीय भारतमें जो कुछ सामाजिक और शिक्षासम्बन्धी कार्य देख पड़ते हैं वे सब प्रायः इन्हीं उत्साही आर्यसमाजियोंके कारण हैं तो अवश्य हम कृतघ्नता सूचित करेंगे। जैनोंके आर्यसमाजी होनेका सचमुच यही वास्तविक कारण है। इस बीसवीं शताब्दिमें धर्मकी परिभाषामें कुछ अंतर हो गया है! मातृभूमि, मनुष्य समाजकी सेवा और आत्मत्यागहीको आजकल न्याय, सिद्धान्त, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश इत्यादिके ज्ञान, और पूजा, यज्ञ जप आदि बाह्य आडम्बरोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दियाजाता है। यही नवयुवकोंका आदर्श धर्म है। यदि जैनजाति चाहती है कि उसका यह बहुमूल्य अंश, यह उत्साह और जीवनसे परिपूर्ण युवक-मंडल उसे छोड़कर न चला जाय, तो उसे उचित है कि वह भी समयानुकूल कार्यको उत्तेजना दे, और वह भी आधुनिक ढंगपर शिक्षाप्रचारकी संस्थायें संगठित करे। फिर वह निश्चिन्त होकर बैठे; कोई नवयुवक कभी यह बात स्वप्नमें भी न सोचेगा कि मैं इस श्रेष्ठ धर्मको त्याग कर किसी दूसरे मतकी शरण लूँ। इटावेकी तत्त्व-प्रकाशिनी सभाने यह कार्य प्रारम्भ किया है किन्तु अभी इस ओर बहुत कुछ करना बाकी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस सम्बधमें एक बात और है। कुछ तो पुराने द्वेषोंके कारण और कुछ इस समाजमें प्रचलित बुरी प्रथाओंके कारण लोगोंने इस धर्मको एक प्रकारके भयंकर विषमय धुएँमें लिप्त कर दिया है, जिसके कारण न केवल लोगोंको इससे घृणा और भय होता है किन्तु स्वयं इस धर्मका भी गला घुँट रहा है। अतः विचारशील जैनोंका यह भी कर्तव्य है कि प्रयत्न करें और इस धुएँको नाश कर डालें, कुप्रथाओंको दूर कर दें और वास्तविक मूल सिद्धान्तोंके ज्ञानका प्रचार करें।

४ नाशमान धर्म—उपर्युक्त बातोंसे ही यह चतुर्थ कारण ठीक जान पड़ता है। सरकारी रिपोर्टमें लिखा है कि "ऐसा जान पड़ता है कि यह धर्म विलुप्त हो रहा है।" विचारवान् पुरुष पूछते हैं कि क्या इस धर्ममें कोई ऐसी बात है जो जैनोंको उन्नत नहीं होने देती और उनकी संख्या नहीं बढ़ने देती? किन्तु हा! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हमारा नाश हो रहा है। क्या धनाढ्य जैनोंकी आँखें खुलेंगी? क्या उन्हें इस बातका ध्यान आवेगा कि जिन मंदिरोंके बनावानेमें वे लाखों रुपये व्यय कर देते हैं वे बहुत निकट भविष्यमें बिना पुजारियोंके व्यर्थ हो जायँगे! क्या कोई उन्हें यह नहीं समझा सकता कि इस ह्रासके रोकनेका कार्य लाखों गुणा अधिक पुण्यमय है? क्या इस बातको जानकर भी वे जैनधर्मको निजकी सम्पत्ति समझनेवाले धुरंधर पंडित लोग—जो अगाध प्रेमके कारण अपनेसे निम्न श्रेणीके मनुष्योंका जैनधर्ममें पदार्पण करना सहन नहीं कर सकते—अपनी संकीर्ण उपदेशदेनेवाली जिह्वाओंके लगाम न लगावेंगे? ऐतिहासिक दृष्टिसे जैनधर्म बड़े महत्त्वका है, इसके पुराने मंदिरों और शास्त्रोंसे संसारको बहुत लाभ पहुँचा है, यह सब कुछ ठीक है; किन्तु क्या वे यह नहीं देख सकते कि यदि इस धर्मके अनुयायी ही न रहे तो यह सब महत्त्व क्या काम आवेगा? क्या इतने पर भी औरोंके इस धर्ममें आजानेको वे लोग द्वार न खोलेंगे?

सरकारी रिपोर्टोंमें घटी क्यों हुई इसका तो उल्लेख है; किन्तु इसका कोई जिकर नहीं कि इस जातिकी जन-संख्या बढ़ी क्यों नहीं। जिन करणोंसे घटी हुई है वे चाहे थोड़े समयसे हों और शायद थोड़े समय तक रहें भी; किन्तु हम देखेंगे कि वे कारण कि जिनसे हमारी उन्नति रुकी हुई है कहीं अधिक बलवान् और भयंकर हैं।

इन कारणोंमें हमारे सामाजिक रीति-रिवाजोंका बहुत बड़ा भाग है और इनमें भी यहाँ एक विशेष रिवाज पर खास जोर देना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि वह समाजमें ऐसा जमा हुआ है कि कभी किसीको यह ध्यान भी नहीं आता कि इसमें भी परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता है। आइए, पहले जैनोंकी विवाह-सम्बंधी संख्याओं पर विचार करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उमर	समस्त जनसंख्या		विवाहित		अविवाहित		रंडुवे और विधवायें	
	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
०–५	७५,३१६	७६,२१२	४२५	९४८	७४,७२३	७५,१७२	१६८	९२
५–१५	१,४१,२२७	१,२६,३१३	६,७१०	२५,३४९	१,३४,०११	९९,७९७	५०६	१,१६७
१५–४५	३,२२,०११	२,९८,३२८	१,९८,७९६	२,१७,६८२	९९,५०७	६,२०७	२३,७०८	७४,४३९
४५–	१,०४,९९९	१,०३,७७६	६३,००७	२५,६४८	८,९५६	५२९	३३,०३६	७७,५९९
जोड़	६,४३,५१३	६,०४ ६२९	२,६८,९३८	२,६९,६२७	३,१७,१९७	१,८१,७०५	५७ ४१८	१,५३ २९७

इस विवरणसे एकदम स्पष्ट हो जाता है कि जिस वयमें अधिक सन्तान उत्पन्न हो सकती है अर्थात् १५–४५ वर्षतक, उस वयके ३,२२,०११ पुरुषोंमेंसे केवल १, ९८, ७९६ ही विवाहित हैं और उस ही वयकी २,९८,३२८ स्त्रियोंमेंसे ८०, ६४६ अविवाहित अथवा विधवायें हैं। अथवा लगभग ५ पुरुषोंमेंसे २ और चार स्त्रियोंमेंसे १ या तो अविवाहित है या विधुर अथवा विधवा है। ४० प्रतिशत पुरुष, और २५ प्रतिशत स्त्रियाँ अविवाहित ! यह संख्या वास्तवमें बहुत ही अधिक है और इसमें सन्देह नहीं कि वे अपनी इच्छासे अविवाहित नहीं रहे हैं। अमरीका और यूरोपके लोग बहुधा निर्धनताके कारण विवाह नहीं करते; किन्तु भारतवर्षमें और जैनोंमें ऐसा नहीं है। विवाहके मार्गमें खास रुकावट जो है वह यह है कि जैन-समाजमें अगणित छोटी छोटी जातियाँ हैं जिनमेंसे बहुतोंमें केवल २–३ सौ स्त्री पुरुष ही बच गये हैं। लगभग २० जातियाँ तो ऐसी हैं जिनमें १०० से अधिक स्त्री पुरुष नहीं।

एक जातिका पुरुष दूसरी जातिमें विवाह नहीं कर सकता। यही नहीं, एक जातिमें बहुतसे गोत्र होते हैं और यदि विवाह होता है तो वर कन्याकी औरसे चार चार गोत्रोंको छोड़कर विवाह हो सकता है अर्थात् वर अपना गोत्र, अपने नानाका गोत्र, अपने पिताके नानाका गोत्र और अपनी माताके नानाका गोत्र इनमेंसे किसी भी गोत्रकी कन्यासे विवाह नहीं कर सकता और इस ही प्रकार कन्याके पक्षमें भी वर चार गोत्रोंमें से किसीका नहीं होना चाहिए। यह तो हुई राजपूतानेकी बात; मध्यप्रदेश और मध्यभारतमें यह नियम और भी कड़ा है। वहाँ कई जातियोंमें आठ आठ गोत्रोंको छोड़कर विवाह होता है।

ऐसी दशामें यदि किसी जातिमें १०० स्त्री पुरुष हैं तो वहाँ इस प्रकार गोत्र छोड़े नहीं जा सकते और युवकोंको अविवाहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहना पड़ता है। जिन जातियोंमें इससे भी कम संख्या हैं उनकी दशाका इसहीसे अनुमान कर लेना होगा।

२५ वर्षसे अधिक वयकी २,०३२ स्त्रियाँ अविवाहित हैं। इन स्त्रियोंके अविवाहित रहनेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। इस प्रश्नके हल करनेका जो भी उपाय निकलेगा उसमें प्रचलित रिवाजमें बहुत बड़े परिवर्त्तन करने होंगे और छोड़नेके गोत्र घटाने होंगे। जो लोग इन परिवर्तनोंको करनेकी इच्छा करें उन्हें किसी बातसे डरना नहीं चाहिए। क्योंकि इन रिवाजोंमें कोई धार्मिक अंश नहीं है। धर्म ऐसा करनेके विरुद्ध उपदेश नहीं देता। यदि ये प्रथायें धार्मिक हों तो भी आत्मरक्षाके लिए ऐसे परिवर्त्तन अनिवार्य हो जाते हैं। उत्तरीय भारतके लोग इस नियमकी कड़ाईको भलीभाँति नहीं समझ सकते; क्योंकि प्रथम तो अग्रवाल जाति बहुत बड़ी है और दूसरे जैन अग्रवालों और वैष्णव अग्रवालोंमें विवाह हो सकता है; किन्तु मध्यप्रदेश और राजपूतानेमें ये बातें नहीं है।

स्त्रियोंकी संख्याका कम होना भी बहुत बड़ी कठिनाई है। सब मिलाकर वे संख्यामें पुरुषोंसे लगभग ४०००० कम हैं। किन्तु इस संख्यासे वास्तविक कठिनाईका कुछ भी पता नहीं चलता। स्त्रियोंका चतुर्थांश तो वैधव्यका दुःख भोग रहा है। कुल विधवायें १,९३, २९७ हैं। अविवाहित स्त्रियोंकी संख्या १,८१, ७०५ है। ३० वर्षसे ऊपरकी स्त्रियोंको छोड़ दें तो १,८०, ००० ऐसी स्त्रियाँ बच जाती हैं जिनका विवाह हो सकता है। ४५ वर्षसे कम वय वाले विवाह कर सकनेवाले पुरुषोंकी संख्या ३, ३२, ६२३ है। यदि मान लिया जाय कि वे सब १,८,००० स्त्रियाँ विवाह कर लें (यद्यपि यह संभव नहीं है) तो भी डेढ़ लाखसे अधिक पुरुष अथवा ४५ वर्षसे कम वय वाले पुरुषोंमेंसे २८ प्रतिशत क्वाँरे ही रह जावेंगे। इससे कुछ पता चलता है कि किस प्रकार स्त्रियोंकी कमी जैनोंकी संख्या बढ़ने नहीं देती।

जो लोग इस कठिनाईसे बचनेका उपाय सोचेंगे उन्हें इस स्त्रियोंकी कमीके कारण ढूँढ़ने होंगे। उन्हें यह ध्यान रखना होगा कि प्रकृतिने ही इस जातिके लिए यह कठिनाई उपस्थित नहीं की है। जितने लड़के पैदा होते हैं लड़कियाँ उनसे कम नहीं होतीं। ऊपरके विवरणसे ही स्पष्ट है कि पाँच वर्षसे कम अवस्थावाले बालकोंमें लड़कियोंकी ही संख्या अधिक है। १० से २० वर्ष तक ही प्रायः सब बालकोंका विवाह होता है और इस ही वयमें प्रायः लड़कियाँ मातायें बन जाती हैं और इस ही वयमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक घटजाती है। इस वयके १,२८,१०५ पुरुष हैं और १,०५,३७४ स्त्रियाँ। स्त्रियोंकी संख्या कोई २२,४३१ कम है। यह कमी सब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उमरोंकी स्त्रियोंकी कमीकी आधीसे अधिक है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि प्रकृति पुरुषोंसे अधिक स्त्रियाँ पैदा करती है तो भी हम उन्हें अपने बुरे बर्त्तावे और बुरी प्रथाओंसे मार डालते हैं। सरकारी रिपोर्टमें भी यही बात लिखी है। बुरा बर्त्ताव, कामकी अधिकता, स्वास्थ्य नाशक पर्दा, बालविवाह और बचपनमें ही माता हो जानेका भार, सचमुच उन्हें मार डालता है। इन रिवाजोंके प्रति घोर युद्ध करना होगा। इनको जबतक हम समूल नाश न कर डालेंगे जैन जातिकी वृद्धि कदापि नहीं हो सकती।

बालविवाहसे केवल स्त्रीजातिका स्वास्थ्य-ही नहीं बिगड़ता; किन्तु बलहीन समाज और रोगी बालकोंके होनेका यही मुख्य कारण है। यह एक ऐसी प्रथा है कि जिसे हम उपेक्षाकी दृष्टिसे कदापि नहीं देख सकते। किन्तु याद रखना चाहिए कि इसके नाश करनेके लिए बहुत साहस-और बलकी आवश्यकता होती है। इसकी हानियोंको जानते हुए भी हमारे जैन भाई, शिक्षित और विद्वान् जैन नेता तक अपने बालकोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ दिखलाई देते हैं। जबतक हम प्रयागके भ्रातृमंडलके सदस्योंकी भाँति निर्भयतासे और साहस-पूर्वक नियम न बना लेंगे तबतक इस कुप्रथाका नाश होना कठिन ही नहीं असम्भव होगा। १८ वर्षके युवा और १४ वर्षकी कन्याका विवाह हो सकता है। इससे कम-वयका विवाह, विवाह नहीं गुड़ियोंका खेल है। उसमें हमारी सहानुभूति नहीं—हम उसमें भाग नहीं ले सकते। हो सका तो अपनी सन्तानका विवाह इससे भी अधिक वयमें करेंगे। इत्यादि बातें जबतक हम दृढ़ता-पूर्वक हृदयमें अंकित नहीं करलेंगे, तब-तक कोई आशा करना व्यर्थ है।

किन्तु केवल इन बातोंसे काम न चलेगा। चले भी कैसे? जब प्रति ४ स्त्रियोंमें-से एक विधवा है। बालविवाहके बन्द हो जानेसे कुछ दशा सुधरेगी अवश्य; किन्तु बिना विधवाविवाहके प्रचलित किये जैन-जातिका जीवित रहना कठिन है। २५ वर्ष-से कम वय वाली ११,३०४ विधवाओं पर समाजके नेताओंको दया आनी चाहिए। १५ वर्षसे छोटी १,२५९ विधवाओंको देखकर तो उन्हें रोदन आजाना चाहिए। और ५ वर्षसे छोटी ९२ विधवाओंकी तुत-ली बोलीको सुनकर, यदि वे सच्चे नेता हैं तो प्रचलित रिवाजोंपर और उनको न बद-लनेकी सलाह देनेवाले समाज पर क्रोध और दुःखके मारे काँप उठना चाहिए। पुरुषकी एक पत्नी बीमार होती है कि उसी समय दूसरे विवाहकी बातें पक्की होने लगती हैं। कोई पूछता है कि लाला साहब! आपके पुत्र पौत्र सब मौजूद हैं, फिर अब विवाहकी क्या आवश्यकता? कहते हैं, भाई इसके बिना काम नहीं चलता। उन्हें यह कहते लज्जा नहीं आती! इस बातका ध्यान नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आता कि उनकी पुत्री जो विवाहके कुछ ही महीने पीछे विधवा हो गई है जन्म कैसे व्यतीत करेगी ? खैर । यदि समाजको जीवित रहना ही नहीं है, यदि उसे अपने स्त्री-समाजके चरित्रकी पवित्रता स्थिर रखनी ही नहीं है तो चाहे जो करे; किन्तु यदि यह इच्छा है कि संसारसे नाम न मिटे तो उसे इस प्रश्नको उठाना पड़ेगा और हजार बाधाओंके होनेपर भी कार्य करना ही होगा। शिक्षाप्रचार, विधवाश्रमोंका खुलना, ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञायें इत्यादि प्रयत्न कदापि सफल नहीं हो सकते । प्रकृतिके विरुद्ध कार्य करनेकी सामर्थ्य लाखोंमें एक दोसे अधिकमें नहीं हो सकती । स्त्रियोंसे यह आशा करना मूर्खता है । बहुत अच्छा होता कि इसकी आवश्यकता न पड़ती; किन्तु अब कोई उपाय नहीं ।

बूढ़ोंके विवाह भी रोकने होंगे । इससे विधवाओंकी संख्या अवश्य घटेगी और कमसे कम ऐसे हास्यमय दृश्य देखनेको तो न मिलेंगे कि सफेद बालोंको रँगकर लाठीके सहारे बूढ़ेराम वर बन कर १० वर्षकी बालिकाका पाणिग्रहण कर रहे हैं। दो महीने पीछे उनकी मृत्युसमाचार सुनकर दुःखसे आँसू तो न बहाने पड़ेंगे !

विवाहके मार्गमें इस जातिमें न जाने और कितनी कठिनाइयाँ हैं । इनमें इतना अधिक व्यय करनेकी क्या आवश्यकता है? सब बिरादरीको मिठाई खिलानेका भार क्यों लाद दिया जाता है ? और न जाने कितनी बातें हैं । कहाँ तक कोई लिखे किन्तु एक नये सुधारका जिकर किये बिना नहीं रहा जाता । राजपूतानेको ही इस सुधारके प्रचलित करनेका सौभाग्य प्राप्त है । आजकल कोई युवा विवाह करना चाहे तो उसे पहले कन्याके पिताको कुछ हजार रुपये भेंट देना पड़ते हैं । वैसे तो कन्याका पिता अपने जामाताके घरका पानी भी नहीं पीता; किन्तु रुपया कुछ पानी थोड़े ही है । धनवानोंकी बन आती है । खूब पसन्द करके बाजारके भावसे अधिक रुपया-देते हैं और चाहे कितनी भी उमर हो, चाहे पाँचवी बार विवाह करते हों, झट पट विवाह हो जाता है । गरीब लड़का पढ़ लिखकर होशियार हुआ । शायद २५-३० रुपये महीना कमाने लगा । वह कन्याके पिताकी भेटके रुपये कहाँसे लावे ? कहीं ५-७ वर्षमें कुछ रुपया एकत्रित किया और कहीं बातचीत जमाई कि कोई धनाढ्यने अधिक रुपया देकर सौदा बिगाड़ दिया-रहे कौंरे ।

इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे कारण इस क्षतिके निकलेंगे और इससे बचनेके लिए प्रत्येक कारणका नाश करनेका दृढ़ प्रयत्न करना होगा । बहुत सी सैकड़ों वर्षोंसे चली आनेवाली रीतियोंको उठा देना पड़ेगा । सुधारके कार्यमें बहुत बड़ा विरोध भी होगा । लोग ऐसा भी कहेंगे कि यह कार्य जैनधर्मके सिद्धान्तोंके अनुकूल नहीं। जो यह कार्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर रहे हैं वे जैनधर्मको नाश करडालनेका उपाय कर रहे हैं, इत्यादि; किन्तु सुधारकको यह भी याद रखना चाहिए कि ऐसा शोर केवल संकीर्णहृदय मनुष्य ही मचावेंगे-जिन्हें ये सब बातें कुछ भी समझमें नहीं आतीं। कुछ समयके लिए विचारहीन जैनजाति उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखेगी, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्राचीन धर्मको बहुत सहारा मिलेगा। नाशसे वह अवश्य बच जायगा और इस कारण सब विचारशील मनुष्य इसे पसंद करेंगे। जैनधर्म अपने अनुयायी युवकोंकी ओर आशाकी दृष्टिसे देखता है। वे ही उसे नाशसे बचाकर जैनोंको अन्य भारतवासियोंके बराबरीके बना सकते हैं। किन्तु जैन जाति जिस प्रकार युवकोंके साहसको तोड़ रही है, जिस प्रकार वह सब उन्नतिके विचारोंका हास्य करती है और जिस प्रकार नेतागण स्वाभाविक अकर्मण्यतामें फँस कर इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं, इससे तो यही ज्ञात होता है कि भविष्य कुछ अच्छा नहीं है। यदि जैनधर्म जीवित रहेगा, यदि जैन लोग चाहते हैं कि हम जीवित रहें, तो उन्हें साहसपूर्वक निर्भयतासे कार्य करना होगा। मृत्युसे बचनेका इस समय इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं कि आधुनिक उपायोंका अवलम्बन किया जाय—संसारमें अन्य जातियोंने कैसे उन्नति की है उससे कुछ शिक्षा ग्रहण की जाय। आशा की जाती है कि जैनजाति इस प्रश्नको हँसी खेल न समझकर इस ओर कुछ ध्यान देगी और उपर्युक्त मार्गका अवलम्बन करनेमें हिचकिचाहट न दिखलावेगी।

नोट—यह जैनजातिकी संख्याके घटनेका विषय बहुत ही महत्त्वका है—यह हमारे जीवन-मरणका प्रश्न है। यदि हमने इस प्रश्नको हल कर लिया—संख्याह्रासके यथार्थ कारणोंको जान लिया और हम उनके दूर करनेके उपाय प्रचलित कर सके, तो समझ लीजिए कि हम संसारमें जीते रहेंगे, नहीं तो बस कूच समझिए। अतः जैनसमाजके प्रत्येक हितैषीका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह इस विषयपर विचार करे और यथार्थ कारणोंको ढूँढ़े। इस विषयमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता है कि संख्या घट रही है; पर किन कारणोंसें घट रही है, इस विषयमें मतभेद हो सकता है। संभव है कि लेखक महाशयके बतलाये हुए कारण और उनके दूर करनेके उपाय सर्वसम्मत न हों, ऐसी दशामें विरुद्ध मत रखनेवालोंको दूसरे कारण और उपाय बतलाना चाहिए—चुप होकर बैठ रहना ठीक नहीं है।

जुदा जुदा प्रान्तोंमें संख्याका ह्रास जुदा जुदा परिमाणमें हुआ है, अतः प्रत्येक प्रान्तकी और उस प्रान्तमें बसनेवाली प्रत्येक जातिकी घटी आदिके कारणोंपर भी विचार करनेकी जरूरत है। लेखमें बतलाई हुई प्रान्तवार घटीके अंकोंसे मालूम होता है कि सबसे अधिक संख्या दिगम्बर जैनोंकी घटी होगी। मध्य प्रदेशमें फी सदी २२ और ग्वालियर राज्यमें फी सदी २६ घटी हुई है और इन प्रान्तोंमें श्वेताम्बरसम्प्रदायके लोग बहुत ही कम—प्रायः नहींके बराबर—हैं। इसी प्रकार युक्तप्रान्तमें भी अधिकांश बस्ती दिगम्बरियोंकी है और वहाँ फी सदी १०.५ की कमी हुई है! अतः यह भी एक विचारणीय बात है कि दिगम्बरियोंकी संख्याका ह्रास ही क्यों अधिक हुआ? यह उक्त प्रान्तोंकी विशेषता है या हमारी जातियोंके रीति-रिवाजोंकी?

दिगम्बरसम्प्रदायके विद्वानोंको शायद श्वेताम्बरोंकी चिन्ता न हो, पर जब उन्हींका सम्प्रदाय घट रहा है, तब तो उन्हें इस ओर अपनी बुद्धिको लगाना चाहिए।

—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरी भावना।

(नूतन सामायिक-पाठ।)

ले०, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार।

(१)

जिसने रागद्वेषकामादिक, जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्ष-मार्गका, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, बीर जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
उसके पद-पंकजमें मेरा, मन-मधुकर लवलीन रहो।

(२)

विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हितसाधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुख-समूहको हरते हैं॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उनही जैसी चर्यामें यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँतक इस जीवनमें, औरोंका उपकार करूँ॥

(५)

मैत्री-भाव जगतमें मेरा, सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ न मेरेको आवे,
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६)

गुणीजनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँतक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षोंतक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥

(८)

होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-स्मशान-भयानक, अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन, दृढतर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्ट योगमें, सहनशीलता दिखलावे ॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घरघर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म-फल सब पावें ॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजाका किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगतमें, फैल सर्व-हित किया करे ॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे देशोन्नति-रत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशीसे, सब दुख-संकट सहा करें ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास-प्रसङ्ग ।

ले०, श्रीयुत–बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।

(३३)

वसुनन्दिका समय ।

' वसुनन्दि ' नामके अनेक आचार्य और भट्टारक होगये हैं जिन सबका समय अभी-तक प्रायः अनिश्चत है । जैनसमाजमें इस नामके ग्रंथकार या ग्रंथकारोंके बनाये हुए जो ग्रंथ प्रचलित हैं उनमेंसे **वसुनन्दिश्रावकाचार, प्रतिष्ठासारसंग्रह** (वसुनन्दि-संहिता), मूलाचारकी **आचारवृत्ति** और आप्तमीमांसाकी ' **देवागमवृत्ति** ' नामके ग्रंथोंको देखनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है । इन चारों ग्रंथोंमे ग्रंथोंके बननेका कोई सन् संवत् नहीं दिया और न ' वसुनन्दिश्रावकाचार ' को छोड़कर अन्य तीन ग्रंथोंमें ग्रंथकारने अपनी गुरु–परम्पराका ही उल्लेख किया है । इससे बिना किसी विशेष अनुसंधानके, अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये चारों ग्रंथ एक ही ' **वसुनन्दि** ' के बनाये हुए हैं या एकसे अधिकके । परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि ' श्रावकाचार ' के कर्ता **वसुनन्दि** प० **आशाधरसे** पहले हो चुके हैं; क्योंकि पं० आशाधरने अपनी ' **सागारधर्मामृत** ' की टीकामें, जो कि विक्रमसंवत् १२९६ में बनकर समाप्त हुई है, वसुनन्दिश्रावकाचारकी ' **पंचुंबर-सहियाइं....** ' इस गाथाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि–" **इति वसुनन्दिसैद्धान्तिमतेन दर्शनप्रतिमायां प्रतिपन्नस्तस्येदं । तन्मतेनैव व्रतप्रतिमां बिभ्रतो ब्रह्माणुव्रतं स्यात्तद्यथा–' पव्वेसु इत्थिसेवा ... । ' इस तरह पर पं० आशाधरजीके द्वारा **वसुनन्द्याचार्य** और उनके **श्रावकाचार** दोनोंका उल्लेख किया जाता है । ' प्रतिष्ठासारसंग्रहके कर्ता **वसुनन्दिका** भी उल्लेख पं० आशाधरने अपने ' **जिनयज्ञ-कल्प** ' नामके प्रतिष्ठापाठमें किया है, जो इस प्रकार है:—

जयाद्यष्टदलान्येके
कर्णिकवलयाद्बहिः ।
मन्यन्ते वसुनन्द्युक्त-
सूत्रज्ञैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७४ ॥

अर्थात्–कोई ऐसा मानते हैं कि कर्णिकाके वलयसे बाहर **जयादि** अष्ट देवताओंके अष्ट दल बनाने चाहिए । परन्तु **वसुनन्द्याचार्यके** कहे हुए प्रतिष्ठा–सिद्धान्तको जाननेवाले विद्वान् उसकी उपेक्षा करते हैं–वैसा नहीं मानते । स्वयं पं० **आशाधरने** भी **वसुनन्दिसंहिताके** अनुसार ही वेदिलेखनका विधान किया है और कर्णिकाके वलयके बाहर क्रमशः १६, २४ और ३२ दलोंके बनानेकी आज्ञा की है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इससे उक्त '**प्रतिष्ठासारसंग्रह**' भी पं० आशाधरसे पहले बन चुका है, ऐसा कहनेमें कुछ संकोच नहीं होता। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि, '**आचारवृत्ति**' के कर्त्ता **वसुनन्दि श्रीअमितगतिके पीछे** हुए हैं। क्योंकि उन्होंने **आचारवृत्तिके** आठवें परिच्छेदमें, कायोत्सर्गके चार भेदोंका वर्णन करते हुए, '**त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता ....**' इत्यादि पाँच श्लोक '**उक्तं च**' रूपसे दिये हैं और उनके अन्तमें लिखा है कि, '**उपासकाचारे उक्तमास्ते**' अर्थात् यह कथन '**उपासकाचार**' का है। यह '**उपासकाचार**' ग्रन्थ **श्रीअमितगति**सूरिका बनाया हुआ है जो विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं। इस ग्रंथके आठवें परिच्छेदमें उक्त पाँचों श्लोक उसी क्रमको लिये हुए नं० ५७ से ६१ तक दर्ज हैं। 'देवागमवृत्ति' प्रायः उन्हीं **वसुनन्दि**की बनाई हुई मालूम होती है जो '**आचारवृत्ति**' के कर्त्ता हैं। इस तरहपर इन चारों ग्रंथोंमेंसे दो ग्रंथोंका **अमितगति** (११ वीं शताब्दि) **के बाद** और दो ग्रंथोंका **आशाधर** (१३ वीं शताब्दी) **के पहले** बनना पाया जाता है। इनमेंसे प्रत्येकका कर्ता वसुनन्दि '**सैद्धान्तिक**' कहलाता है। आश्चर्य नहीं कि ये चारों ग्रंथ एक ही वसुनन्दिके बनाये हुए हों। मेरी रायमें ये सब ग्रंथ विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके लगभगके बने हुए हैं। श्रावकाचारमें वसुनन्दिने अपने गुरुका नाम '**नेमिचंद्र**' दिया है और उन्हें जिनागमरूपी समुद्रकी वेलातरंगोंसे धूयमान तथा समस्त जगतमें विख्यात प्रगट किया है। हो सकता है कि ये **नेमिचंद्र** वे ही हों जो '**गोम्मटसार**' ग्रंथके कर्ता कहे जाते हैं। ऐसा होने पर उक्त श्रावकाचारका १२ वीं शताब्दिके लगभग बनना और भी अधिक निश्चित हो जाता है। क्योंकि गोम्मटसारके कर्ता विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं।

(३४)

अरुणमणि और अजितपुराण।

'**अरुणमणि**' या '**लालमणि**' नामके एक कवि हो गये हैं, जिन्होंने विक्रम संवत् १७१६ में '**अजितपुराण**' की रचना की है। यह पुराण उन्होंने औरंगजेब बादशाहके राज्यमें, जहानाबाद नगरके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें बनाकर समाप्त किया है। जैसा कि इस पुराणके निम्न पद्योंसे प्रगट है:—

रसवृषयतिचंद्रे ख्यातसंवत्सरेऽस्मिन्,
नियमितसितवारे वैजयंतीदशम्याम्।
अजितजिनचरित्रं बोधपात्रं बुधानाम्,
विरचिममलवाग्मी रक्तरत्नेन तेन॥
मुद्गले भूभुजां श्रेष्ठे राज्येऽवरंगशाहिके।
जहानाबादनगरे पार्श्वनाथ जिनालये।४१

ग्रंथकर्ताने, इस ग्रंथमें, अपना परिचय देते हुए अपनेको **काष्ठासंघके माथुर** गच्छान्तर्गत **पुष्करगणका** अनुयायी प्रगट किया है और अपनी वंश-परम्परा **लोहाचार्यसे** प्रारंभ की है। लोहाचार्यके वंशमें अनेक मुनियोंके पश्चात **धर्मसेन** नामके गुरु हुए। फिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनके पट्टपर क्रमशः **भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति** और **जिनचन्द्रका** प्रतिष्ठित होना लिखा है । जिनचंद्रका शिष्य **श्रुतकीर्ति** साधु और श्रुतकीर्तिका शिष्य बुध **राघव** हुआ । इसके बाद राघवके तीन शिष्य प्रगट किये हैं; एक **रत्नपाल**, दूसरा **श्रीवनमालि** और तीसरा **कान्हरसिंग** और अन्तमें अपनेको कान्हरसिंहका पुत्र **'लालमणि'** लिखा है । इस परिचयका आदिम पद्य इस प्रकार है:—

श्रीमच्छ्रीकाष्ठसंघे मुनिगण-
गणनातीतदिग्वस्त्रयुष्टे,
तस्मिच्छ्रीमाथुराख्ये वृषभ-
वृषयुते गच्छश्रेष्ठाधिपूज्ये ।
तन्मध्ये सर्वश्रेष्ठे परमपद-
प्रदे पुष्कराख्ये गणे च,
लोहाचार्यान्वये च विगतकलु-
षिता संयतानेक जाताः॥ ११ ॥

(३५)

कनकनन्दि और इन्द्रनन्दि ।

'गोम्मटसारके' कर्मकाण्डमें श्रीमन्नेमिचंद्राचार्यने लिखा है कि:—

वरइंदणंदिगुरुणो
पासे सोऊण सयल सिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा
सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥ ३९६ ॥"

अर्थात्—इंद्रनन्दि गुरुके पाससे सकल सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि गुरुने सत्वस्थानका कथन किया । इससे मालूम होता है कि एक **इन्द्रनन्दि** विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं जो सकल सिद्धान्तके पारगामी कहलाते थे । साथ ही यह भी मालूम होता है कि **कनकनन्दि** भी नेमिचंद्रके गुरु थे और उन्होंने **'सत्वस्थान'** नामका कोई ग्रंथ बनाया है । श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ४० में भी एक **'कनकनन्दि'** का जिकर आया है और उसमें उन्हें **माघनन्दि** सैद्धान्तिकके शिष्य **गण्डविमुक्त देवके बड़े भाई** बतलाया है । साथ ही उनकी प्रशंसामें यह पद्य भी दिया है:—

यो बौद्धक्षितिभृत्कराल-
कुलिशश्चार्व्वाकमेघानलो—
मीमांसामतवर्त्तिवादि-
मदवन्मातङ्गकण्ठीरवः ।
स्याद्वादाब्धिशरत्समुद्गत-
सुधारोचिस्समस्तैस्स्तुतः-
स श्रीमान् भुवि भासते
कनकनन्दी ख्यातयोगीश्वरः ॥

इस शिलालेख और शिलालेख नं० ३९ में **गण्डविमुक्तदेवके** शिष्य महामंडलाचार्य **देवकीर्ति**के स्वर्गवासका उल्लेख किया गया है जो शक संवत् १०८९ में हुआ है और जिसकी यादगारमें ये दोनों शिलालेख देवकीर्तिके शिष्यों द्वारा एक ही पत्थर पर खुदवाये गये हैं । इस शिलालेखके 'कनकनन्दि, और नेमिचंद्रके गुरु 'कनकनन्दि' दोनोंका समय अनुमानसे एक ही बैठता है । बहुत संभव है कि ये दोनों **कनकनन्दि** एक ही व्यक्ति हों ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३६)

नेमिचन्द्रसंहिता (प्रतिष्ठातिलक) ।

जैनसमाजमें, यद्यपि '**नेमिचंद्र**' नामके अनेक विद्वान्, आचार्य और भट्टारक हो गये हैं; परन्तु '**गोम्मटसार**' के कर्त्ता **नेमिचंद्रसिद्धान्त चक्रवर्त्तीका** नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस प्रसिद्धि और नामसाम्यके कारण बहुतसे लोग 'नेमिचंद्र' नामके दूसरे विद्वानोंके बनाये हुए कुछ ग्रंथोंको गोम्मटसारके कर्त्ताके ही बनाये हुए समझने लगे हैं। अनेक विद्वानोंको भी इस विषयमें भ्रम हुआ है। **नेमिचंद्रसंहिता**, जिसका दूसरा नाम '**प्रतिष्ठातिलक**' है और जिसको '**नेमिचन्द्रप्रतिष्ठापाठ**' भी कहते हैं, उन्हीं ग्रंथोंमेंसे एक है जो गोम्मटसारके कर्त्ताके बनाये हुए समझे जाते हैं। इस ग्रंथकी एक पुरानी प्रति ताड़पत्रोंपर लिखी हुई श्रवणबेलगोलके पं० **दौर्बलि** शास्त्रीके भंडारमें मौजूद है। उसके अन्तमें '**शास्त्रावतार**' नामकी एक ४५ पद्योंकी **प्रशस्ति** है, जिसमें ग्रंथकर्ता **नेमिचंद्र**ने अपने कुलादिकका अच्छा परिचय दिया है। इस प्रशस्तिको देखनेसे साफ मालूम होता है कि यह ग्रंथ गोम्मटसारके कर्ताका बनाया हुआ नहीं है बल्कि इसके बनानेवाले 'नेमिचंद्र,' मुनि न होकर, एक **बहुकुटुम्बी गृहस्थ** थे। प्रशस्तिके आदिमें, ब्राह्मण कुलकी प्राचीनताको दिखलाते हुए यह प्रगट किया गया है कि इस कुलके कुछ ब्राह्मण **कांची** नामके महानगरमें हुए हैं, जो ५३ क्रियाओंको पालनेवाले थे और जिनका **विशाखाचार्य**ने आदर किया था। यथाः—

पुराकृतयुगस्यादा-
वादिब्रह्मतनूभवः ।
अन्त्यब्रह्मा स भरतो या-
न्ससृज्य द्विजोत्तमान् ॥ १ ॥
तेषु केचिदथात्यक्त-
जिनमार्गाविवेकिनः ।
अविच्छिन्नान्वयाचार-
परावृत्तिरे द्विजाः ॥ २ ॥
तदन्वयभवाः केचि-
त्कांची नामा महापुरे ।
त्रिपंचाशत्क्रियानिष्ठा-
स्तस्थुः षट्कर्मकर्मठाः ॥ ३ ॥
तान् किलाद्रियतेस्मार्या-
न्विशाखाचार्यपुंगवः ।
उपासकमहावेद-
रहस्याद्युपदेशिनः ॥ ४ ॥

इसके आगे (पद्य नं० १९ तक) उन्हीं ब्राह्मणोंकी संतानमें **अकलंक, इन्द्रनन्दि, अनंतवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसिंह, वादिराज** और **हस्तिमल्ल** आदि अनेक विद्वानोंके अवतार लेनेका कथन किया है और फिर इन विद्वानोंकी वंशपरंपरामें अपने कुटुम्बका सिलसिला बतलाया है, जो इस प्रकार हैः—

'**लोकपाल**' नामके एक ब्राह्मण हुए हैं जो 'गृहस्थाचार्य' कहलाते थे, **चोल** राजाके द्वारा पूजित थे और इस राजाके साथ अपने बन्धुवर्गसहित कर्णाटक देशको चले गये थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनके पुत्रका नाम **समयनाथ** था। समयनाथका पुत्र **राजमल**, राजमलका पुत्र **चिन्तामणि**, चिन्तामणिका पुत्र **अनन्तवीर्य**, अनन्तवीर्यका पुत्र **पार्श्वनाथ**, पार्श्वनाथका पुत्र **आदिनाथ**, आदिनाथका पुत्र **कोदण्डराम**, कोदण्डरामका पुत्र **ब्रह्मदेव** और ब्रह्मदेवका पुत्र **देवेन्द्र** हुआ। इनमें समयनाथको तार्किक, राजमल्लको कवि, चिन्तामणिको वादि और वाग्मी, अनन्तवीर्यको घटवादविशारद, पार्श्वनाथको गीत और आगम शास्त्रका जाननेवाला, आदिनाथको आयुर्वेदमें निपुण, कोदण्डरामको धनुर्वेदका वेत्ता, ब्रह्मदेवको बड़ा बुद्धिमान् तथा षट्कर्मकर्मठ और देवेन्द्रको संहिताशास्त्रमें निष्णात तथा राजमान्यतादि गुणोंसे युक्त लिखा है। यथाः—

आसीत्तदन्वये लोक-
पालाचार्य इति द्विजः।
गृहस्थाचार्यतां रूढो
विद्वान्निस्तारकोत्तमः॥ १६
चोलेन पूजितो राज्ञा
तेन राज्ञा समं स च।
प्रतिदेशाख्यकर्णाट-
देशं प्रापत्स्वबन्धुभिः॥ १७॥
पुत्रः समयनाथाख्यः
तस्यासीत्तर्ककर्कशः।
तत्पुत्रः कविराजादि-
मल्लतः कविशिखामणिः। १८
वादी वाग्मी च तत्पुत्र-
श्चिन्तामणिसमाह्वयः।
अनन्तवीर्यस्तत्सूनु-
र्घटवादविशारदः॥ १९
तदात्मजः पार्श्वनाथः
संगीतागमशास्त्रवित्।
आदिनाथस्तु तत्सूनु-
रायुर्वेदविशारदः॥ २०॥
तस्यात्मजो धनुर्वेद-
वेदी कोदण्डरामकः।
तन्नंदनो ब्रह्मदेवो
धीमान् षट्कर्मकर्मठः॥ २१॥
देवेन्द्रस्तत्सुतो नाम्ना
देवेन्द्रोपमवैभवः।
संहिताशास्त्रनिष्णातः
कलासुकुशलः शुचिः॥ २२॥
राजमान्यो वदान्यश्च
जिनधामादिकारकः।
त्रिवर्गलक्ष्मीसम्पन्नः
चतुरो बन्धुवत्सलः॥ २३॥

देवेन्द्रकी धर्मपत्नी '**आर्यदेवी**' थी। आर्यदेवीके पिताका नाम **विजयपार्य** और माताका नाम **श्रीमती** था। **चंद्रपार्य**, **ब्रह्मसूरि** और **पार्श्वनाथ** ये तीनों आर्यदेवीके सगे भाई थे, जिनमें **ब्रह्मसूरि**को 'महाविद्वान्' लिखा है। यथाः—

सद्धर्मचारिणी तस्य
सैवाभूदार्यदेविका
या श्रीविजयपार्यस्य
श्रीमत्याश्च सुता सती॥ २४॥
यस्या सहोदरा धीरा-
श्चंद्रपार्यो बुधोत्तमः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाविद्वान्ब्रह्मसूरिः
पार्श्वनाथ इति त्रयः ॥ २५ ॥

देवेन्द्रके आर्यदेवीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए;—१ **आदिनाथ**, २ **नेमिचंद्र** और ३ **विजयप**। **आदिनाथ** नामका पुत्र समस्त जैनसंहिताशास्त्रोंका पारगामी था और उसके यहाँ **त्रैलोक्यनाथ** तथा **जिनचंद्रादि**नामके पुत्रोंका जन्म हुआ। **विजयप**-नामका पुत्र ज्योतिषादि शास्त्रोंमें निपुण था और उसका पुत्र **समन्तभद्र** साहित्यका प्रेमी हुआ। **नेमिचंद्र** नामका पुत्र (विवादस्थ प्रतिष्ठापाठका कर्त्ता) **अभयचन्द्र** नामके महोपाध्यायसे तर्क, व्याकरण और आगमको पढ़कर एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ। उसके **कल्याणनाथ** और **धर्मशेखर** नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन दोनोंको ही शास्त्र-समुद्रके पारगामी लिखा है। यथाः—

तद्देवेन्द्रार्यदेव्याख्य—
दम्पत्योरादिनाथकः।
नेमिचंद्रो विजय इति
पुत्रास्त्रयोऽभवन् ॥ २६ ॥
तत्रादिनाथः सर्वार्ह-
त्संहिताशास्त्रपारगः।
तत्पुत्रास्त्रैलोक्यनाथ-
जिनचंद्रादयो बुधाः ॥ २७ ॥
धीमान्विजयपाख्यस्तु
ज्योतिःशास्त्रादिकोविदः।
समन्तभद्रस्तुतत्पुत्रः
साहित्यरससान्द्रधीः ॥ २८ ॥
धीधना नेमिचंद्रस्तु
तर्कव्याकरणागमान्।
अधीत्याभयचन्द्राख्य-
महोपाध्यायसन्निधौ ॥ २९ ॥
पदवाक्यप्रमाणज्ञ—
रूढिं वाढमुपागतः।
पुत्रौद्वौ तस्य कल्याण—
नाथाख्यो धर्मशेखरः ॥ ३० ॥
इति तत्रादिमः सर्व—
शास्त्रवाराशिपारगः।
द्वितीयस्तदीयोभू-
च्छास्त्रेषु सकलेष्वपि ॥ ३१ ॥

इसके बाद ग्रंथकर्ता **नेमिचन्द्रने**, अपना कुछ विशेष परिचय देते हुए, ग्रंथ बननेका सम्बंध प्रगट किया है, जिससे मालूम होता है कि नेमिचंद्र सदा धर्मार्थियोंको शास्त्रका व्याख्यान किया करते थे; उन्होंने **सत्यशासनपरीक्षा** आदि ग्रंथोंकी रचना की थी, राजसभाओंमें अनेक प्रतिवादी नैयायिकों-को जीतकर वे जैनधर्मकी बहुत कुछ प्रभावना करनेमें समर्थ हुए थे; उन्हें राजादि-कोंके द्वारा आन्दोला, शिबिका (पालकी) और छत्ररूपी वैभवकी प्राप्ति हुई थी; वे याचकोंको दान देते हुए अपने **बन्धुवर्ग-सहित भोगोंको भोगते थे**, उन्होंने जैन-मंदिर, मंडप और वीथियाँ बनवाई थीं और श्रीपार्श्वनाथभगवानके आगे गाने बजाने आदिका सामान जोड़ा था। इस प्रकार **नेमिचंद धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग-लक्ष्मीसे शोभित थे** और राजाके द्वारा सन्मानित हुए **स्थिरकदम्ब** नामके नगरमें रहते थे। एक समय उनके मामा (संभवतः पार्श्वनाथ) ने जो कि पार्श्वनाथ भगवानका दृढ़ भक्त था, मामाके पुत्रोंने, पिताके भाइयोंने, स्वकीय भाइयोंने, भाई-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योंके पुत्रोंने, निज पुत्रोंने और अन्य बन्धु-वर्ग तथा विद्वानोंने उनसे प्रीतिपूर्वक यह प्रार्थना की कि, 'हे आयुष्मन् सर्वशास्त्र-विशारदसूरे! आप एक उत्तम पंचकल्याणके विस्तारको लिये हुए प्रतिष्ठाशास्त्रकी रचना करो।' इस प्रार्थनाको सुनकर और जिनेंद्रकी भक्तिसे प्रेरित होकर नेमिचंद्रने यह 'प्रतिष्ठातिलक' नामका प्रतिष्ठाशास्त्र बनाया है। यथाः—

अथ यो नेमिचंद्रार्यः
शास्त्रं वेत्यखिलं स्फुटं।
व्याखाति शास्त्रमर्थिभ्यो
यः सदा धर्मकाम्यया ॥ ३२ ॥
सत्यशासनपरीक्षा-
मुख्यप्रकरणादिकं।
यस्तु शास्त्रं विरचय-
द्विश्वविद्वज्जनस्तुतं ॥ ३३ ॥
नृपास्थानेषु तर्केषु
कर्कशान्प्रतिवादिनः।
निर्जित्य बहुशोयस्तु
जैनं प्राभावयन्मतं ॥ ३४ ॥
यो नृपाद्यार्पितान्दोल-
शिबिकाछत्रवैभवः।
योददात्यर्थमर्थिभ्यो
भुंक्ते भोगान्स्वबन्धुभिः ॥ ३५ ॥
अकारयच्च यो जैन-
धाममंडपवीथिकाः।
गीतं (नृत्यं च) वाद्यं च
पार्श्वशाग्रे नियोजयत् ॥ ३६ ॥
एवं यो धर्मकामार्थ-
त्रिवर्गश्रीविराजितः।
आस्ते स्थिरकदम्बाख्य-
नगरे राजपूजितः ॥ ३७ ॥
श्रीपार्श्वनाथपादाब्ज-
सेवाहेवाकमानसः।
मातुलः स्वस्य तत्पुत्राः
पितृव्याश्च सहोदराः ॥ ३८ ॥
तत्पुत्राश्च स्वपुत्राश्च
बन्धवोन्ये विपश्चितः।
कदाचिन्प्रार्थयन्तेस्म
तमेनं प्रीतिमानसः ॥ ३९ ॥
आयुष्मन् श्रणु भोः सूरे
सर्वशास्त्रविशारद।
प्रतिष्ठाशास्त्रमेकं सत्
पंचकल्याणविस्तरं ॥ ४० ॥
विरच्यतामिति ततो
जिनभक्त्या च चोदितः।
सःचाहं नेमिचंद्राख्यो
निर्मिणोमि स्वशक्तितः ॥ ४१ ॥
प्रतिष्ठातिलकं नाम
प्रतिष्ठाशास्त्रमुत्तमं।
शास्त्रेऽत्र स्खलितं यन्मे
तद्बुधाः क्षन्तुमर्हत ॥ ४२ ॥

ऊपरके इस संपूर्ण परिचयसे इस विषयमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि यह प्रतिष्ठापाठ गोम्मटसारके कर्ता उन **नेमिचंद्र** सिद्धान्त चक्रवर्तीका बनाया हुआ नहीं है जो मुनि थे और विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं। बल्कि इसके कर्ता **नेमिचंद्र** एक गृहस्थ थे और वे कवि **हस्तिमल्ल**से भी, जो विक्रमकी १३ वीं शताब्दिके अन्तमें हुए हैं, कई शताब्दि पीछेके विद्वान् हैं और इस लिए मेरी रायमें यह ग्रंथ लगभग **१६ वीं** शताब्दिका बना हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुनर्जन्म ।

ले०, पं० रूपनारायण पाण्डेय ।

(पिछले अंकसे आगे ।)

१ **परोसिन**—यह कौन है रे !

२ **परोसिन**—हम क्यों निकलें रे ?

३ **परोसिन**—क्यों निकलें ?

४ **परोसिन**—बतला तो सही !

५ **परोसिन**—मर मुर्दे !

दौलत०—(अवाक् होकर) वाह !

१ **परोसिन**—कलमुहा मर गया, अच्छा हुआ । (बैठती है ।)

२ **परोसिन**—लोगोंकी जान बची । (बैठती है ।)

३ **परोसिन**—दोनों लड़के पेट भर खायँगे । (बैठती है ।)

४ **परोसिन**—लड़की मगर खानेको न पावेगी । (बैठती है ।)

५ **परोसिन**—बुड्ढको नरकमें भी जगह न मिलेगी । (बैठती है ।)

दौलत०—बैठ गई !—दौलतराम सँभलो ! तुम्हारा अस्तित्व ही मिटाया जा रहा है ! अपनेको बचाओ—नहीं तो बस मरे !—(परोसिनोंसे) निकलो हरामजादियो यहाँसे; निकलो-निकलो ! न निकलोगी ? अच्छा ठहरो—(बाहरसे लकड़ी लाकर) निकल जाओ, इसीमें खैर है, नहीं तो देखो इसी लकड़ीसे—

१ **परोसिन**—वाह, खूब बना है !

दौलत०—निकलो !

२ **परोसिन**—मारेगा क्या ?

दौलत०—मार डालूँगा । (लाठी घुमाते हुए) निकलो !

३ **परोसिन**—मार तो सही ! देखें तो (ईंट उठाना ।)

दौलत०—अरे बापरे ! (पीछे हटता है ।)

४ **परोसिन**—निकल मुर्दे निकल, नहीं तो सिर तोड़ दूँगी !

दौलत०—(डरकर) नहीं नहीं—मैं जाता हूँ ।

५ **परोसिन**—नहीं तो (झाड़ू उठाकर) यह झाड़ू देखी है ?

दौलत०—अरे बचाओ ।

(दौलत भागता है और उसके पीछे दौड़ती हुई परोसिनें जाती हैं ।)

(दौलतकी लड़कीका प्रवेश ।)

लड़की—लालाजी ! लालाजी ! अम्मा रो रही हैं ।

(दौलतरामका प्रवेश ।)

दौलत०—कौन रो रहा है ?

लड़की०—अम्मा ।

दौलत०—क्यों ?

लड़की०—मैं क्या जानूँ ?

(नेपथ्यमें विलाप—)

" अरे तुम कहाँ चले गये—तैयार रसोई छोड़कर कहाँ चल दिये—ऊँ हूँ हूँ हूँ ! "

दौलत०—वाहवाह, औरत तकने मरा समझकर रोना शुरू कर दिया ! अरे मुनुआकी अम्मा—मैं जीता हूँ । आया । (लड़कीसे) चलो बेटी ।

(कन्याका जाना और उसके पीछे दौलतरामका जानेकी चेष्टा करना ।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(दौलतरामके सालोंका प्रवेश उनके साथ सन्दूक पिटारे टूंक वगैरह हैं।)

१ साला–ले चलो, ले चलो !

दौलत०–अब यह क्या है !

२ साला–अजी कुलीको बुलाओ।

३ साला–कुली ! कुली !

(प्रस्थान।)

दौलत०–अरे कुलीको क्यों पुकारते हो ? सब सामान क्यों घरसे बाहर निकाले फेंके देते हो ?

२ साला–ले जाँयगे।

दौलत०–कहाँ ?

१ साला–कहाँ और कहाँ ! अपने घर !–

दौलत०–क्यों ? मेरा सामान अपने घर क्यों ले जाओगे ?

२ साला–तुम्हारा सामान ?

दौलत०–जी।

१ साला–(व्यंग्यके तौरपर) जी,–लो कुली आगये।

(तीन चार कुलियोंके साथ तीसरे सालेका फिर प्रवेश।)

२ साला–उठाओ। पहले यह लोहेका सन्दूक उठाओ।

(कुली लोग लोहेका सन्दूक उठानेकी कोशिश करते हैं।)

दौलत०–खबरदार ! (आगे बढ़ता है)

१ साला–चुप रहो ! (मारनेको तैयार होता है)

दौलत–बिहारी ! बिहारी ! (जाता है)

(सब सालोंका एक दूसरेको देखकर इशारा करना और हाथकी ओटमें हँसना।)

१ साला–बिहारीको लेकर फिर आरहा है।

२ साला—(कुलीसे) यह उठाओ—

३ साला—जल्दी जल्दी।

(बिहारीके साथ दौलतरामका फिर प्रवेश।)

दौलत०—बिहारी, देखो तो सही कैसा अन्धेर है—

बिहारी—(दौलतके सालोंसे) क्यों साहब, आपलोग घरका असबाब कहाँ लिये जा रहे हैं ?

१ साला—क्यों न ले जाँय ! ये सब चीजें अब हमारी बहनकी हैं।

२ साला—वह अब हम लोगोंके पास रहेगी।

३ साला—क्योंकि हमारे जीजाजी मर गये हैं।

दौलत०—देखते हो अंधेर ! मेरे जीतेजी यह अत्याचार हो रहा है। उधर स्त्री जारही है और इधर मेरा सब कुछ—(रोता है)

बिहारी—भाइयो ! दौलतरामकी विधवा इस समय मेरी स्त्री है ! क्योंकि हाल ही मेरी स्त्री मर गई है और तुम्हारी बहनका पति मर गया है।

दौलत०—इससे यह प्रमाणित होता है कि मेरी स्त्री तुम्हारी स्त्री है ?

बिहारी—कमसे कम यह साबित करना कुछ कठिन नहीं है। (दौलतके सालोंसे) आपलोग इस समय घर जाइए। इस लोहेके सन्दूकको मैं अपने जिम्मेमें लेता हूँ।

साले—यह क्या साहब !

बिहारी—ज्यादह चालाकी न कीजिएगा। मैं वकील हूँ। बस चले जाइए।

साले—अगर न जायँगे तो ?

बिहारी—तो कानूनी बहससे तुमलोगोंको उड़ा दूँगा। गवाहोंके द्वारा खाकमें मिला दूँगा।

साले—अरे बापरे ! चलो, चलो (जाते हैं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिहारी—(दौलतसे) अब आप भी जाइए। यह घर अब मेरा है । सेठ दौलतराम मर गये।

दौलत०—लेकिन मैं तो मरा नहीं।

बिहारी—इसके लिए प्रमाणकी आवश्यकता है । कोई गवाह है ?

दौलत०—क्यों, मेरी स्त्री गवाही देगी।

बिहारी—अच्छी बात है, अपनी स्त्रीको बुलाइए।

दौलत०—सुनती हो मुनुआकी अम्मा ! जरा इधर आओ। लज्जा करके अब क्या होगा ! मैं जान और मालसे जा रहा हूँ। बाहर आओ।

(रोते रोते चुन्नीका प्रवेश।)

मैं हुई अकेली छुटे सहारे सारे।
इस तरह छोड़ कर कहाँ सिधारे प्यारे ॥
हूँ नहीं जानती राह, भटकना होगा।
ठोकर खाकर सिर-पैर पटकना होगा ॥
हे प्राणनाथ, दो दरस, तरस कुछ खाओ।
पैरोंसे ठेलो नहीं, नाथ, अपनाओ ॥
मैं व्याकुल रोती यहाँ तुम्हारे मारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—नहीं नहीं, मैं पैरोंसे नहीं ठेलूँगा। आहा, कैसी सती स्त्री है !

(चुन्नीका रोना)

यह कढ़ी पकौड़ी बड़े, मुँगौरी भाजी।
है सभी रसोई अभी बनाई ताजी ॥
विधना, तूने क्या निठुर ठान ठाना है।
अफसोस, अकेले मुझे सभी खाना है ॥
तुमको न बदे थे खान-पान ये न्यारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—रसोई बनाई है ? मैं भी तुम्हारे साथ खाऊँगा ! आहा कैसी सती लक्ष्मी है !

(चुन्नीका रोना)

मल मलकर नित्य खिजाब अजीब मसाले।
सन ऐसे उजले बाल बनाकर काले ॥
ज्वानीका सा सब रंग ढंग दिखलाना।
सोनेके तारों बँधे दाँत चमकाना ॥
सपने ऐसी ह हँसी हुई दैयारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—अरे मैं हँसूँगा। (दाँत निकालकर हँसता है)

(चुन्नीका रोना)

आकर अब मुझको कौन कहेगा प्यारी।
बढ़िया ला देगा कौन दुपट्टे सारी ॥
एसेंस, लवेंडर, टूथपाउडर साबन।
किससे अब माँगूँ, राम, जड़ाऊ जोशन ॥
मिलकर मरते तो रँज न कुछ फिर थारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—मेरी प्यारी रो मत, मैं आता हूँ। (चुन्नीका हाथ पकड़ता है)

चुन्नी—अरे बापरे ! यह कौन है !

दौलत०—मैं तुम्हारा स्वामी हूँ-तुम्हारा प्यारा हूँ-तुम्हारा नाथ, तुम्हारा प्राणेश्वर, तुम्हारा हृदयसर्वस्व सेठ दौलतराम हूँ। देखो, जरा इधर देखो।

चुन्नी—(घूँघट खोलकर देखकर) अरे बापरे ! (मूर्च्छाका अभिनय करती है)

दौलत०—ऐं ? यह क्या बात है !

बिहारी—तू कौन पाजी है ! भले आदमीकी औरतके बदनमें हाथ लगाता है ?

दौलत०—यह तो मेरी ही स्त्री है।

बिहारी—तुम्हारी !

दौलत—हाँ !

बिहारी—तुम बड़े भले आदमी हो !

दौलत०—यह मेरी स्त्री है।

(चुन्नीका उठना।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दौलत०—वह देखो, होश आगया।

चुन्नी—मैं उनके बिना नहीं जी सकती।

बिहारी—धन्य पतिव्रता!

चुन्नी—मैं अबला सरला विह्वला बाला—

बिहारी—आहा हा हा!

चुन्नी—दैवकी सताई दुखपाई मुरझाई—

बिहारी—हाय हाय!

चुन्नी—मैं अलबेली नबेली अकेली कैसे रह सकती हूँ!

बिहारी—अकेली क्यों रहोगी मोहिनी, मायाविनी, बिहारीके जीतेजी तुमको काहेकी चिन्ता है?

दौलत०—बिहारी, तुम्हारी यह हरकत!

चुन्नी—अभी मेरे पतिका पीछा हुआ है—

बिहारी—मेरी भी स्त्री अभी मरी है—

चुन्नी—मनकी हालत—

बिहारी—बहुत—

दौलत०—खराब है! सो तो समझा। लेकिन—

बिहारी—(चुन्नीसे) जाओ, अब तुम भीतर जाओ! मैं ब्याहकी तैयारी करने जाता हूँ।

(चुन्नीका जाना)

दौलत०—कैसे! ब्याह और क्रियाकर्म एक साथ ही होगा! हा जगदीश्वर!

बिहारी—लाठी कहाँ है? यह है। (लाठी लेना)

दौलत०—लकड़ीकी क्या जरूरत है?

बिहारी—स्त्रीको वश करनेकी तैयारी पहलेहीसे कर लूँ। ५०००) रुपयेका गहना है। १००००) रुपये नगद तो चुन्नीके पास हैं।

दौलत०—देखो, तुम मेरे बहनोई हो-वकील हो। तुम ऐसे नीच नहीं हो सकते कि मेरे जीते ही मेरी स्त्रीसे ब्याह करो।

बिहारी—नीच कैसा? विधवासे ब्याह करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

दौलत०—किन्तु वह तो मेरी स्त्री है।

बिहारी—यह बात तो वह खुद नहीं स्वीकार करती।

दौलत०—ईश्वर! (रोता है)

बिहारी—देखिए साहब, आपको देखकर मुझे दुःख होता है। शायद आप दौलतराम सेठ ही हों। किन्तु प्रमाण नहीं है। कानूनमें आप टिक नहीं सकते। बतलाइए, क्या करूँ?

दौलत०—वही तो। स्त्रीने नहीं पहचाना, या मैं सचमुच मर गया हूँ, देखूँ। समस्या यह है कि मैं मर गया हूँ या जीता हूँ? मैं लहरोंमें पड़कर तूफानसे भरे संसार-सागरमें बहा-बहा फिर रहा हूँ, या खेल खेल रहा हूँ? मैं शेर रीछ साँप आदिसे परिपूर्ण बनके घोर घने अन्धकारमें रो रहा हूँ, या गाना गाता हूँ? चुटकी काटकर देखूँ! (चुटकी काटता है) लगता तो है! सिर हिला डुला कर देखूँ! (वैसा ही करता है) कुछ भी समझमें नहीं आता!—नहीं यह न जीना है न मरना है। यह जीने-मरनेकी एक खिचड़ी है! कैसी आफत है! मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि ऐसी दशा मेरी होगी।—ये कौन हैं? ये तो सब मेरे सगे हैं! अच्छा, छिपकर देखूँ ये क्या करते हैं! (छिपता है)

(बाजेगाजेके साथ दौलतके नातेदारोंका प्रवेश।)

१ आदमी—यहीं बैठो? (बैठता है)

२ आदमी—हाँ, आज जरा जी भरकर आनन्द मनालें। (बैठता है)

३ आदमी—(बैठकर) बुड्ढा अब जाकर मरा।

४ आदमी—मैं तो बहुत खुश हुआ। (बैठता है)

५ आदमी—एक पैसा किसीको नहीं दिया। (बैठता है)

१ आदमी—बड़ा कंजूस था!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३ आदमी—वह समझे था कि मैं कभी नहीं मरूँगा ।

२ आदमी—तो यह प्रमाणित हुआ कि दौलतराम सेठको भी मौत नहीं छोड़ती !

४ आदमी—खूब कहा—हाः हाः हाः हाः—

५ आदमी—हाः हाः हाः हाः—

दौलत०—ये लोग तो खूब खुश देख पड़ते हैं ।

१ आदमी—बुड्ढा बड़ा सूम था ।

२ आदमी—आफ़त गई ।

दौलत०—एहसानमन्द हूँ ।

३ आदमी—वसीयतनामेमें ज़रूर हमलोगोंके लिए कुछ लिख गया होगा ।

दौलत०—(अँगूठा दिखाकर) एक पैसा भी नहीं ।

५ आदमी—किसीको तो दे ही गया होगा ।

दौलत०—किसीको नहीं ।

६ आदमी—साथ में ले जा सकेगा नहीं !

दौलत०—सन्दूकें न ले जा सकूँगा, चामीका गुच्छा तो ले जा सकूँगा ।

२ आदमी—दूसरे जन्ममें सिर पीटेगा ।

दौलत०—सिर पीटनेको तो जी अभी चाहता है ।

३ आदमी—आप न कुछ खाया न पिया—देखो तो !

दौलत०—भाई अब ऐसा न होगा । दिनको अंगूर वग़ैरह मेवा और रातको बढ़िया भोजन !

४ आदमी—अब उसके दोनों लड़के सारी दौलत उड़ावेंगे ।

दौलत०—छोड़ जाऊँगा, तब न !

५ आदमी—अच्छा अब गाओजी !

दौलत०—अच्छा गाओ, सुनूँ ।

(सबका गाना)

गज़ल ।

प्राण-रक्षामें सदा
प्राणान्तका है सामना ।
जानकर यह, कौन करता,
जन्मकी फिर कामना ॥

भोर होते नींद खुलती,
हर घड़ी आफत खड़ी ।
आयुको अपनी बिताना,
घोर है शव-साधना ॥

स्नान करते भूख लगती
है सुलगती आगसी ।
तब जुटाना अन्नका,
उसको निगलना चाबना ॥

अन्न चुकजाता, न बुझती
पेटकी ज्वाला अहो ।
नोन है तो घी नहीं,
संयोग कुछ ऐसा बना ॥

लेटते ही मक्खियाँ
दिनको हमेशा दिक करें ।
रातको फिर मच्छड़ोंका
जुल्म होता है घना ॥

हाय, आधी रातको
जेवर जड़ाऊके लिए ।
रूठना रोना प्रियाका
मिनमिनाना माँगना ॥

चीज़ लो तो दाम उसके
माँगते हैं फिर असभ्य ।
राह रोके हैं महाजन
और करते लुचपना ॥

ब्याह करते ही कई
बच्चे भी हो जाते हैं ढेर ।
ब्याहनेमें औ पढ़ानेमें
दिवाला पीटना ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(दौलतरामके दोनों पुत्रोंका प्रवेश ।)

१ पुत्र—जायदाद आधी मेरी है ।

२ पुत्र—एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है । लालाजी वसीयतनामेमें सब मेरे नाम लिख गये हैं।

दौलत०—लिख गया हूँ ! कहाँ ? मुझे तो नहीं याद ?

१ पुत्र—वसीयतनामा जाली है । मैं साबित करूँगा ।

२ पुत्र—कभी नहीं ।

१ पुत्र—कभी नहीं ।

२ पुत्र—मैं मिस्टर दासको अपनी ओरसे खड़ा करूँगा ।

१ पुत्र—मैं बैरिस्टर जैक्सनसे पैरवी कराऊँगा ।

२ पुत्र—मैं दस हज़ार रुपये खर्च करूँगा ।

१ पुत्र—मैं पन्द्रह हज़ार रुपये उठाऊँगा ।

२ पुत्र—तू बेईमान है !

१ पुत्र—तू धोपेबाज है !

२ पुत्र—तू मूसा है !

१ पुत्र—तू मच्छड़ है !

२ पुत्र—मेरे घरसे निकलजा !

१ पुत्र—तेरा घर !—तेरे बापका घर है ।

२ पुत्र—निकलो—

१ पुत्र—चुपरह—

१ नातेदार—अजी झगड़ा क्यों करते हो ! आज खुशी मनाओ । ऐसा आनन्दका दिन, तुम्हारे बाप मरे हैं !

३ नातेदार—हाँ, पेट भरकर खाओ ।

४ नाते०—जी भरकर आनन्द मनाओ ।

५ नाते०—नाचो !

२ नाते०—गाओ !

१ नाते०—मैंने एक गीत जोड़ा है !

२ नाते०—हाँ गाओ, वही गीत—

३ नाते०—कौन ?

१ नाते०—वही जो मैंने जोड़ा है, 'बुड्ढा मरा है' ।

दौलत०—इसी बीचमें गीत भी बनगया । बलिहारी !

(सबका गाना)

बुड्ढा मरा है बुड्ढा मरा है
बुड्ढा मरा है मरा है मरा है ।

दौलत०—बस, अब तो सहा नहीं जाता ।

(सबका गाना)

बुड्ढा मरा है मरा है मरा है

(दौलतराम लकड़ी हाथमें लिये आगे बढ़कर गाता है-)

बुड्ढा मरा नहिं बुड्ढा मरा नहिं
देखो अजी अभी बुड्ढा मरा नहिं ।

१ पुत्र—ऐं ऐं ! यह कौन है ?

२ पुत्र—हाँ, यह कौन है ?

दौलत०—(लड़कोंसे) तुम चाहे जितना आश्चर्य प्रकट करो, लेकिन मुझको विश्वास है कि बुड्ढा अभी नहीं मरा और वह सशरीर तुम्हारे आगे खड़ा है ।

१ पुत्र—कैसे !

२ पुत्र—ठीक तो है, कैसे !

(दोनों भाग जाते हैं)

नातेदार लोग—(दौलतसे) तुम कौन हो जी, हमारे गानेमें खरमंडल डाल दिया ! निकलो । तुम कौन हो ?

दौलत०—मैं इन दोनों लड़कोंका बाप हूँ।

नातेदार०—बाप ! हो ही नहीं सकता । हम विश्वास ही नहीं करते । तुम साबित करो कि बाप हो ।

दौलत०—सब कुछ साबित ही करना होगा ! भाइयो ! सुनो—इस बातको तो कोई साला नहीं साबित कर सकता कि वह बाप है । उस बात पर तो विश्वास ही कर लिया जाता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नातेदार०—नहीं, हम लोग विश्वास नहीं करते। निकल जाओ।

दौलत०—कहाँ जाऊँ?

नातेदार०—यह हम क्या जानें? हम नहीं जानते।

दौलत०—दोनों लड़कोंने पहचान लिया है, मगर मुँहसे स्वीकार नहीं किया। बाहरे कलजुगी लड़के!

नातेदार०—(दौलतसे) अजी सोचते क्या हो? दूधिया भंग है। पियोगे? लो ज़रासी।

दौलत०—(कुछ सोचकर) मैं तो जीता हूँ, फिर दूधिया क्यों छोड़ूँ। (भंग लेकर पीता है)

(रण्डीका प्रवेश।)

१ नातेदार—लो बी गौहरजान आगई। (गानेके ढंगसे) "आओ आओ मित्र।"

२ नातेदार—(उसी स्वरमें) "बैठिए सिर आँखोंपर"

३ नातेदार—(उसी स्वरमें)

इश्ककी गोली बना कर
बाम पर फेंका करूँ।
तू मुझे देखे-न देखे
मैं तुझे देखा करूँ॥

४ नातेदार—ठीक नहीं हुआ (दूसरे स्वरमें)—

इश्ककी गोली बनाकर
बाम पर फेंका करूं।
तू मुझे देखे-न-देखे
मैं तुझे देखा करूँ॥

५ नातेदार—दे–ए–ए–ए–ए–ए।

दौलत०—वाह, यहाँ तो सभी उस्ताद हैं।

१ नाते०—देखते क्या हो!

२ नाते०—बी गौहरजानको गाने दो।

दौलत०—(भंगके नशेमें) लेकिन मैं दौलतराम सेठ—

३ नाते०—पहले मैं गाऊँगा!–खा–आ–आ–आ–आ–।

४ नाते०—चुप।–करूँ ऊँ–ऊँ।

५ नाते०—गाओ जान, कोई नाटककी चीज़ गाओ—

गौहर०—अच्छा, सुनिए–

बूटी पिलाके लुभाय
गया कोई मुझे।

१ नाते०—वाह वाह, वाह वाह।

२ नाते०—ठहरो बीबी, अन्तरा मुझे कहने दो।–

बड़े सबेरे जो कोई छाने
बाकी लंबी दीठ।
उड़त चिरैया वह पहचाने
गिरी सड़कसे ईंट॥

१ नाते०—सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे फेर छनेगी—

३ नाते०—सुनो–

दुसरे पहरे जो कोई छाने
वाके लंबे कान।
तवा कटोरा कलसी बेची
धर लोटे पर ध्यान॥

१ नाते०—सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे फेर छनेगी।—

४ नाते०—अरे मेरी भी तो सुनो—

तिसरे पहरे जो कोई छाने
ज्यों भादौंकी कीच।
घरके जानें मर गये और
आप नशेके बीच॥

दौलत—अरे घरके जानें तो जाना करें, पर न मैं मरा हूँ और न नशेके बीचमें हूँ!–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ नाते०—अरे चुप, सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे—

५ नाते०—मेरी क्या योंहीं रह जायगी। सुनो—

चौथे पहरे जो कोई छाने
बच्चा आपी आप।
बे-जोरू बे-ससुरेके हो
छै बच्चेका बाप॥

दौलत०—वाह बेटा, तुम्हारी खूब रही!

१ नाते—अरररर सबेरे फेर छनेगी भंग—

गौहर—**मुझे कोई बूटी पिलाके**
लुभाय गया कोई मुझे।

(सबका नाचना। साथ ही साथ दौलतका भी नाचना और गिरना।)

नातेदार—लो बी गोहरजान, एक ढेर हुआ तुम्हारे गानेसे।

दौलत०—(पड़े ही पड़े नशेमें) अबे चुप—मैं सेठ—दौलतराम हूँ। या नहीं?—फिर—मैं कौन हूँ? कौन भाई दौलत, आगये!

(बिहारी, दारोगाके वेषमें रामचन्द्र और एक हवलदार दो सिपाहियोंके वेषमें नन्दू, मोहन और सुन्दरका प्रवेश।)

बिहारी—हाँ आगया दादा—

नातेदार—अरे पुलिस आगई। भागो भागो (भाग जाते हैं!)

बिहारी—(दारोगासे) यही दौलतराम बनकर आया है—असामियोंको धोका देनेके लिए।

दारोगा—क्या तुम कहते हो कि मैं सेठ दौलतराम हूँ?

दौलत०—(हाथ जोड़कर) जी जमादार साहब।

(सिपाहियोंका पकड़लेना!)

दारोगा—पकड़ो इसको।

दौलत०—जी मैं—

दारोगा—दौलतराम सेठ है!

दौलत०—(काँपता हुआ) जी, कभी किसी जन्ममें नहीं!

दारागो—तब उसके जैसा रूप रखकर क्यों आया?

दौलत०—जी—

दारोगा—झूठ, सच बोलो।

दौलत०—दारोगा साहब, मेरे कहनेके पहले ही आपने मेरी बातको झूठा ठहरा लिया!

दारोगा—वह मैं जानता हूँ।

दौलत०—दारोगा साहब, यह तो मैं जानता था कि पुलिसके आदमी सर्वशक्तिमान् होते हैं, लेकिन यह न जानता था कि सर्वज्ञ भी होते हैं।

दारोगा—सच बोलो। (रुलका हूला मारना)

दौलत०—जी वही कहनेवाला था, लेकिन इस मारसे तो सच बात भूली जाती है। अब मैं क्या कहूँ तो आप खुश हों?

दारोगा—कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। (रूल दिखाता है)

दौलत०—कभी नहीं। मारो न बाबा!

दारोगा०—फिर तुम कौन है?

दौलत०—संपत सेठ—

दारोगा—संपत सेठ कौन?

दौलत०—दौलत सेठका छोटा भाई।

दारोगा—तो फिर दौलत सेठके जैसा चेहरा बनाकर क्यों आया?

दौलत०—जी—(सोचता है)

दारोगा—सच बोलो। (रूलका हूला मारता है) उसका ऐसा चेहरा बनाकर—

दौलत०—हम दोनों जोड़िया भाई थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दारोगा—चुप रह।

दौलत०—अच्छा चुप रहूँगा।

दारोगा—(बिहारीको दिखाकर) ये कौन हैं ?

दौलत०—पहले थे मेरे—अर्थात् दौलतरामके बहनोई; लेकिन अब उसकी विधवा स्त्रीके पति हैं!

दारोगा—यह तुम सच कह रहे हो ?

दौलत०—जी मैं झूठ कभी कभी बोलता हूँ।

दारोगा—नाक रगड़ो, कान पकड़ो।

दौलत०—क्यों जमादार साहब ?

दारोगा—चुप रहो, कान पकड़ो।

दौलत०—अच्छा साहब। (वही करता है)

दारोगा—कहो—मैं कभी किसी जन्ममें सेठ दौलतराम नहीं था।

दौलत०—ऐसा ही होगा साहब। मैं कभी न था।

बिहारी—Barred by limitation.

दारोगा—अच्छा, छोड़ दो।

बिहारी—(दारोगासे) चलिए, कुछ जलपान कर लीजिए।

दौलत०—और मेरी भूतपूर्व विधवाके साथ दारोगा साहबकी जान पहचान भी करा देना।

दारोगा—चुप रहो!

दौलत०—(डरकर) जी!

(दौलतके सिवा सब चल देते हैं)

दौलत०—(आप ही आप) अन्तको छलके हूलोंसे यह साबित होगया कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। कहा ही है कि मारके आगे भूत भागते हैं। नहीं भाई, मैं मरगया था, यह बात झूठ नहीं है। मरगया था। यह मेरा पुनर्जन्म है! आज नया अनुभव और नया विश्वास पाकर मैं फिर जी उठा हूँ। मरनेके बाद जो कुछ होनेवाला था वह जीतेजी अपनी आँखोंसे ही देख लिया। गरीबोंको सताकर और अपनेको भी धोका देकर जो रुपया मैंने जमा किया है वह इन लोगोंके यों उड़ानेके लिए! बस, अब नहीं! अब अगर मैं अपना जीना साबित कर सका तो गरीबोंको अन्न-वस्त्र बाँटूँगा—और खुद भी पेट भरकर खाऊँगा। जबतक साबित नहीं करता तब तक हँस-लो-खालो। अगर अपना जीना साबित न करसका तो वनको चला जाऊँगा और इस लिए तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्म न हो।

(बिहारी और चुन्नीका प्रवेश)

(चुन्नीका गाना)

इसीसे रखूँ तुम्हें नजरोंमें।
तनिक फिरी जो आँख पिया
तो देख न पड़ें घरोंमें॥ इसी०
रत्न समझ, आँचलमें बाँधूँ,
पीतम तुम्हें नरोंमें।
आओ, रसमें रीस भला क्या,
चलो चलें कमरोंमें॥ इसी०॥

चुन्नी—(दौलतसे) क्या सोच रहे हो ?

दौलत०—यही कि! (हाथ जोड़कर बिहारीसे) प्रणाम। (प्रणाम करना। फिर चुन्नीके हाथ जोड़ना) क्या हुआ है ?

बिहारी—दौलतरामजी!

दौलत—कौन दौलतराम ?

बिहारी—तुम!

दौलत०—कौन कहता है! तुम लोगोंने मिलकर अभी साबित कर दिया है कि मैं सेठ दौलतराम नहीं हूँ। अब मैं दौलतराम हूँ ? नहीं, मैं दौलतराम नहीं हूँ।

चुन्नी—अजी ख़फ़ा क्यों होते हो। तुम तो मेरे प्राणनाथ हो।

दौलत०—कैसे! अभी तो सब साबित हो गया है। जन्मपत्र, डाक्टरका सार्टीफ़िकेट,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अखबार, गवाह-और सबसे बड़ा प्रमाण रूलका हूला। इतनेपर भी मैं तुम्हारा प्राणनाथ बना हुआ हूँ! मैं कौन हूँ? मैं नहीं हूँ।

चुन्नी—नहीं, तुम हो।

दौलत०—यह सुनकर बहुत खुश हुआ।

चुन्नी—तुम नाहक ख़फ़ा क्यों होते हो!

दौलत—मैं ख़फ़ा हूँ, चिढ़ गया हूँ, मुझे हैरान न करो, मैं वनको जाऊँगा।

चुन्नी—मैं भी जाऊँगी।

दौलत—मैं फ़कीर हो जाऊँगा।

चुन्नी—मैं फ़कीरिन हो जाऊँगी।

दौलत०—और तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्ममें मुझे ब्याह न करना पड़े। और अगर ब्याह भी करना पड़े तो तुम्हारे ही साथ न करना पड़े।

चुन्नी—मैं तपस्या करूँगी कि तुम्हारे ही साथ मेरा ब्याह हो।

दौलत०—नहीं, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

चुन्नी—वाह, प्यार क्यों नहीं करती।

(बिहारी सिर हिलाता है।)

दौलत०—सिर हिलाते हो! अब क्या कोई और उपद्रव सोच रहे हो।

बिहारी—तुम्हारा यही विश्वास है?

दौलत०—विश्वास? अब क्या यह साबित करना चाहते हो कि यह मेरी स्त्री भी नहीं है! जन्मपत्र निकालो—सार्टीफ़िकेट हासिल करो—अख़बारमें लिखो।

बिहारी—अच्छा तुम्हारी स्त्री तुमको देता हूँ।

दौलत०—बड़ी कृपा हुई!

बिहारी—अच्छा सेठजी, आपको कुछ शिक्षा मिली या नहीं?

दौलत०—बहुत कुछ।—यह मेरा पुनर्जन्म है।

गाना।

गज़ल (सोहनी)

व्यर्थ ही तूने जमा जोड़ी
मिला सुख क्या भला?
हाय, इसके वास्ते काटा
अनेकोंका गला?
गाड़ना, संदूकमें रखना,
जमाकरना, वृथा।
कालके आगे कहीं चलती
किसीकी है कला?
जो न परउपकारमें या
भोगमें दौलत लगी।
तो कहो, फिर साथ
उसको कौन अपने ले चला?
दान या तो भोग या फिर
नाश धनकी गति कही।
जो न देता और खाता,
नाश ही उसको फला॥
सूमके पीछे सभी धन
दसजगह लुट जायगा।
इस लिए खाले, खिलाले
और बनले मनचला॥

(पर्दा गिरता है।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षा ।

(ले०, श्रीयुत बाबू खूबचन्दजी सोधिया
बी. ए, एल. टी. ।)

समाजके सामने यह महत्त्वका प्रश्न सदैव ही उपस्थित रहता है कि अपनी संतानको किस भाँति शिक्षा दी जाय, उन्हें ऐसे नागरिक किस भाँति बनाया जाय जिसमें कि वे अपने जीवनका सर्वोत्तम उपयोग कर सकें। समाजकी सत्तामें हमेशा अदल बदल हुआ ही करती है। नये नये परिवर्तन होते हैं और प्राचीन विचार-प्रणाली तथा रीति-रिवाज अपने बलको खोकर धीरे धीरे मृतप्राय हो जाते हैं। समाजकी जरूरतें भी समय समय बदला करती हैं। प्राचीन भारतको एक समय संतान-वृद्धि इष्ट थी, इसके विपरीत आज हमें संतानवृद्धिको कम करना ही ठीक जँचता है। इसी लिए समाजको समय समयपर इन नवीन बलोंका विचार करके अपनी जरूरतोंके माफिक अपने बालकोंकी शिक्षामें फर्क करना ही पड़ता है। यथार्थमें अपनी आवश्यकताओंको पूर्णरूपसे पूरी करनेवाली शिक्षाप्रणालीका प्राप्त हो जाना कोई सरल बात नहीं है। जब कि इंग्लेंड सरीखे सुसभ्य और विचारशील देशमें भी राष्ट्रीय शिक्षा पूरी संतोषजनक नहीं है, तब भारत जैसा अवनति प्राप्त देश यदि अपनी शिक्षाप्रणालीसे असंतुष्ट हो तो कौनसा आश्चर्य है।

जरा जातीय शिक्षाकी गहनताका भी तो विचार करो। प्रथम तो योग्य शिक्षाका मतलब क्या है यही हल होना है, दूसरे कौन कौनसे विषय पढ़ाये जानेसे यह उद्देश्य सिद्ध होगा, तीसरे शिक्षापद्धति और शिक्षक किस तरह प्राप्त किये जायँ, चौथे नैतिकशिक्षा और औद्योगिक विभाग, पाँचवें स्कूलोंको बनवाना, छट्ठे इस विभागका ऐसा संगठन करना ताकि समाजका प्रत्येक बच्चा उसे सरलतासे प्राप्त कर सके, इत्यादि सब बातोंका योग्य संस्कार करना और समय पर उसकी आलोचना करते रहना कोई सरल काम नहीं है। जबतक देशके प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षाका महत्त्व भलीभाँति विदित न होगा, जबतक हम इस बातकी जिम्मेदारी अपने सिरपर लेनेके लिए राजी न होंगे—तबतक इस विषयमें यथेष्ठ उन्नति होना संभव नहीं है। हमारे अगुओं और अधिकारियोंके चित्तपर यह बात भलीभाँति अंकित हो जाना चाहिए कि देशके जीवन—मरणका प्रश्न यही है। संतोषका विषय है कि कुछ दिनोंसे सरकारने शिक्षा विस्तार करनेका निश्चय कर लिया है; परंतु भारत सरीखे भारी देशके लिए शिक्षाका यथेष्ठ बंदोवस्त कर देना कोई सहज बात नहीं है। इस काममें प्रचुर धन और प्रचुर समयकी आवश्यकता है। इसी लिए सरकार हमसे बार बार कहा करती है कि इस विषयमें हम लोग आगे बढ़ें। सर्वसाधारणको अब इस विषयमें सावधान होकर विचार करना चाहिए।

हर्षका विषय है कि थोड़े समयसे हमारा ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। समाचार-पत्रों और सभाओंमें जहाँ तहाँ इस विषयकी चर्चा होने लगी है। सब लोग एक स्वरसे प्रचलित प्रणालीके दोषोंको दिखला रहे हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी बातके दोषोंको देख लेना जितना सहज है, उतना उन दोषोंका प्रतिकार करनेवाले उपायोंको बता देना सहज नहीं है । हमें एक बात यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि वस्तुके गुण और दोषोंकी सच्ची आलोचना बिना उसकी परीक्षा किये नहीं हो सकती । समाज-सुधारका क्षेत्र इतना विस्तीर्ण है कि इसमें सहसा उतावली करके किसी कार्यको कर डालना अच्छा नहीं हो सकता । गिरते-पड़ते, उठते-बैठते, साहसपूर्वक आशाके सहारे चलते चलते उन्नतिका शिखर ही प्राप्त होता है ।

इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान प्रणालीमें कई बड़े बड़े दोष हैं; परंतु नवीन प्रणाली कैसी होनी चाहिए इस विषयमें भी तो बड़ा मतानैक्य है । एक ओर वर्तमान प्रणालीके पृष्ठपोषक अधिकांश इसीको कायम रखकर जहाँ तहाँ कुछ कुछ रद्दोबदल करनेसे ही संतुष्ट हैं, दूसरी ओर कई लोग प्रचलित पद्धतिका नये सिरेसे संस्कार करना आवश्यक समझते हैं । मतानैक्य होना तो कोई बुरी बात नहीं है; परंतु विषयके महत्त्वको देखकर जहाँ तक हो सुधार इस भाँति किया जाय कि जिसमें पैसे और परिश्रमकी बचतके साथ ही साथ अधिकसे अधिक लाभ मिल सके ।

वर्तमान प्रणालीमें क्या क्या दोष हैं? पहला और सबसे भारी तो यही है कि स्कूलों और कालेजोंसे निकले हुए विद्यार्थी सिर्फ नौकरी पर ही अवलम्बित रहते हैं । कारण इसका यह है कि उन्हें ऐसी कोई कला अथवा उद्योग नहीं सिखाया जाता जिससे कि उनमें स्वावलम्बनका नाता बढ़े । इसमें सन्देह नहीं कि एक समय ऐसा था जब कि हमें राज्यकी नौकरियाँ करके राज्यप्रबन्ध-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता थी; परन्तु सरकारकी कृपासे इस विषयमें हमने खूब उन्नति कर ली है । जो कुछ बाकी है धीरे धीरे और भी पूरी होजायगी; परंतु अब सिर्फ नौकरीके लिए ही शिक्षा प्राप्त करनेका समय नहीं है । शिक्षाका विस्तार भी अब इतना होगया है कि सब शिक्षितोंको सरकारी नौकरी मिल जाना भी संभव नहीं । इस बातको भी सब लोग मानते हैं कि शिक्षित मनुष्योंका बेकार बैठना अच्छा नहीं । भूखे बैठे किसीसे रहा नहीं जा सकता । कहावत है कि निठल्ले मनुष्यके हृदयमें शैतानका निवास होता है । समाजका उपकार करनेके बदले ऐसे लोग अक्सर उसे बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं । इस कठिन समस्याका कोई न कोई उपाय अवश्य ढूँढ़ना चाहिए । अब ऐसा समय नहीं है कि इस विषयकी उपेक्षा की जाय ।

शिक्षित युवाओंको रोजगार किस भाँति मिले—ऐसी शिक्षाकी व्यवस्था क्योंकर की जाय कि स्कूल और कालेजोंसे निकलकर हमारे युवाओंको नौकरीके लिए भटकना न पड़े, यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है । कई लोग इसको हल करनेका एक विचित्र ही उपाय बताते हैं । वे कहते हैं कि हर साल सरकारी नौकरीकी जगहें कितनी खाली होती हैं यह गिन लो—अपने स्कूल कालेजोंमें उसी प्रमाणसे विद्यार्थियोंकी संख्या रखलो अथवा कुछ नहीं तो परीक्षाओंको सख्त कर दो—ऐसा करनेसे काम हो जायगा । विद्यार्थी उतने ही पास होसकें जितने नौकरी पा सकते हैं, पर यह उपाय कोई अच्छा उपाय नहीं है । हम पछते हैं. भला वे विद्यार्थी जो कई बार फेल होकर घर बैठने कौन सा रोजगार करेंगे? यदि उनसे कहा जाय कि इस अधिक विद्यार्थियोंको भर्ती करेंगे ही नहीं, तो कहना होगा कि यह असंभव है । शिक्षा एक ऐसी मिठाई है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि जिसकी एक बार चाट लग जाने पर मनुष्य उसे खाये बिना नहीं रह सकता। शिक्षाके क्षेत्रको संकुचित करनेकी सलाह अच्छी नहीं है, वह निराशा और असंतोषसे भरी हुई साफ नजर आती है। इस सलाहको माननेके लिए कोई तैयार न होगा।

इस रोगका उत्तम उपाय यही है कि औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्थाकी जाय। इसके दो उपाय हैं या तो जिस भाँति साधारण शिक्षाके छोटे स्कूलसे लगा कर बड़े बड़े कालेज तक हैं उसी भाँति औद्योगिक शिक्षाके लिए भी ऐसे स्कूल हों जहाँ निम्न श्रेणीके कौशलसे लगाकर ऊँची ऊँची कलाओंकी शिक्षा दी जाय। प्रत्येक शहरमें एक एक औद्योगिक स्कूल खोलनेसे बड़ा भारी लाभ होगा। अथवा यदि खर्चके कारण ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती तो कमसे कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि प्रत्येक स्कूलमें एक एक औद्योगिक कक्षा खोल दी जाय। ऐसे विद्यार्थी जो पढ़ने लिखनेमें कुशल नहीं हैं इन कक्षाओंमें स्थान पा सकेंगे। इस भाँति एक निशानेसे हम दो मतलब सिद्ध कर सकेंगे। पहला, हमारे विद्यार्थी नौकरीके लिए चिल्लाहट न मचायँगे, दूसरे हमारा उद्योग भी उन्नत हो जायगा। इस विषयमें सिर्फ एक ही अड़चन नजर आती है। वह यह कि वर्ण-व्यवस्थाके कारण क्या उच्च जातिके हिन्दू अपने लड़कोंको इन शालाओंमें भेजनेको राजी होंगे? जहाँ तक देखा जाता है, अब लोग वर्ण-व्यवस्थाके उतने अंध-उपासक नहीं हैं और वे इन शालाओंका उपयोग करनेमें न हिचकेंगे।

वर्तमान प्रणालीके विरुद्ध दूसरा दोष यह है कि अँगरेजी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करनेमें अधिक श्रम और समय खर्च होता है। इससे बालकपनकी बहुमूल्य वर्षे और स्वास्थ्य बुरी तरहसे नष्ट होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेट्रिकुलेशन तककी सात सालकी शिक्षामें जो ज्ञान सम्पादित होता है यदि मातृभाषाके द्वारा शिक्षा दी जाय तो उतना ज्ञान दो सालहीमें प्राप्त हो सकता है। बड़ा भारी नुकसान तो इससे यह है कि बालकको कामयाबी हासिल न होनेसे उसे शिक्षासे घृणा हो जाती है। यदि शिक्षा मातृभाषाके द्वारा दी जाय तो निस्संदेह बड़ा लाभ हो। यहाँ तक तो सब लोगोंकी राय एक ही है; परंतु प्रश्न यह है कि क्या हमारी मातृभाषायें इतनी प्रौढ़ हो गई हैं कि उनके द्वारा शिक्षा दी जासके? इस प्रश्नके विषयमें लोगोंकी रायें भिन्न भिन्न हैं! बहुतोंका मत है कि मातृभाषायें इस कार्यके लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। पुस्तकें तैयार की जासकती हैं और उनके द्वारा शिक्षा मजेसे दी जासकती है। इसके विरुद्ध कई लोगोंकी समझमें समय अभी नहीं आया है। कुछ भी हो, इस विषयमें अधिक विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं है। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करना यही प्राकृतिक नियम है। हर्षका विषय है कि सरकारका ध्यान भी कुछ कुछ इस ओर झुकने लगा है। वह दिन अब दूर नहीं है जब कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाने लगेगी।

अँगरेजी भाषाने हमारा बड़ा उपकार किया हैं। हमारे संकुचित विचार-क्षेत्रको विस्तृत कर देना इसीका काम है। इस भाषाका साहित्य कई अमूल्य भावोंसे भरा हुआ है। मातृभाषाओंका खजाना बढ़ानेके लिए भी अँगरेजीका ज्ञान आवश्यक है। संसारके सामयिक विचारोंसे परिचित रहना भी अँगरेजी जाने बिना कठिन है और खास कर व्यापारमें तो इसके बिना बड़ी ही असुविधा होती है। इस लिए अँगरेजीकी शिक्षा तो हमें अवश्य देना होगी; परंतु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अँगरेजी अन्य भाषाओंकी तरह क्यों न पढ़ाई जाय ? इस विषयमें भी हमें कई कठिनाइयोंका साम्हना करना होगा । कालेजोंकी उच्चशिक्षा अभी मातृभाषाओंमें नहीं दी जा सकती। यदि हाईस्कूलोंमें शिक्षा अँगरेजीमें न दी जाय-तो क्या कालेजोंकी शिक्षा उसके द्वारा आसानीसे प्राप्त की जासकेगी ? यथार्थमें इस विषयमें अधिक वादविवाद न करके समय ही की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

शिक्षापद्धतिके विषयमें भी बहुत कुछ सुधार करनेकी आवश्यकता है । कई विषय यथा-भूगोल इतिहास स्कूलोंमें बुरी रीतिसे पढ़ाये, जाते हैं । पहाड़ों और नदियोंके नाम तथा इतिहासकी तारीखें रटते रटते विद्यार्थियोंका जी ऊब आता है । विद्यार्थियोंको इन विषयोंसे अभिरुचि उत्पन्न करानेका उद्देश्य शिक्षकोंको अपने सामने रखना चाहिए । शिक्षाको व्यवहारोपयोगी बनाना हमारा कर्तव्य है ।

इस समयका बड़ा भारी प्रश्न शिक्षाका विस्तार है । देशमें अशिक्षाका राज्य फैला हुआ है । समाजको इससे बढ़कर हानि और क्या हो सकती है , जब कि अज्ञानमें हम इतने डूबे हुए हैं कि सौमेंसे ८० मनुष्योंको काला अक्षर भैंसेके बराबर है। तब बताओ उन्नति किस भाँति हो सकती है ? उन्नतिके जितने रास्ते हैं उन सबमें सबसे पहली और भारी अड़चन जनसमूहका अशिक्षित होना है । मानसिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति होनेका सर्वप्रधान उपाय शिक्षा ही है । निरक्षरताके समान देशका दूसरा भयानक शत्रु कोई नहीं है। इसलिए राजा और प्रजा दोनोंका कर्तव्य है कि जिस भाँति हो सके शिक्षाका विस्तार किया जाय । नैतिकशिक्षाका प्रश्न भी बड़े महत्त्वका है। परंतु नैतिकशिक्षाका मतलब हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए । नैतिकशिक्षाका मतलब पुस्तकें पढ़ लेना ही नहीं है । चरित्रगठन करनेके लिए अच्छी आदतें डालना ही सबसे अच्छा उपाय है । यह बात निस्संदेह सत्य है कि बालकोंके सामने अच्छे आदर्श रक्खे जायँ; परंतु बालकोंकी आदतोंको सावधानीसे देखना भी आवश्यक है । हमारे देशमें ज्योंही माता पिताओंने लड़केका नाम स्कूलमें भर्ती करा पाया कि वे उसकी ओरसे बिलकुल निश्चिंत हो जाते हैं । यह बात ठीक नहीं है । यदि तुम बालककोंको २४ घंटे गुरुके सामने नहीं रख सकते तो जितने समय तक वह पाठशालामें नहीं है तुम्हीं उसके जिम्मेदार हो । प्रत्येक माता पिताका कर्तव्य है कि वह अपने बालकोंके आचरण पर दृष्टि रक्खे ।

हमारे युवाओंका बड़ा भारी दोष यह है कि वे आलसी हो जाते हैं । अपना काम खुद करनेकी तो उनमें हिम्मत ही नहीं रहती । उसका सबब कुछ तो यह है कि विद्यार्थी समझते हैं कि अँगरेजी पढ़कर बाबू बनेंगे, खूब तनख्वाह मिलेगी—काम करना तो कुलीगिरी है । अक्सर माता पिता भी इस विषयमें ला-परवा रहते हैं । वे कहते हैं लड़का तो पढ़ता है उससे बाजारका काम न लेना चाहिए । यह बड़ी गल्ती है । दूसरा कारण बोर्डिंगहाउसोंकी अव्यवस्था है जहाँ विद्यार्थियोंको पानी भी बहुधा नौकर ही पिलाते हैं । इनके सिवाय और भी कई कारण हैं । यथा (१) मानसिक श्रमकी अधिकता (२) विषय विभागमें ऐसा कोई विषय नहीं जिसमें शारीरिक श्रम करना पड़े (३) परीक्षाफलोंकी कड़ाई (४) शारीरिक खेल कूदमें योग न देना । हमें आवश्यक है कि अपने बालकोंकी इस बुरी टेव पड़ जानेके कारणोंको देखें और उन्हें दूर करें ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षाका विषय बहुत ही गहन है। इस विषयमें वर्षों तक लगातार विचार करनेकी आवश्यकता है। इसके विचारके लिए प्रत्येक ग्राममें एक एक शिक्षा-समितिका होना आवश्यक है। इन सभाओंमें ग्रामके सभ्य इकट्ठे होकर शिक्षा विषयक बातोंकी आलोचना किया करें। सरकारने इसी अभिप्रायसे प्रत्येक स्कूलमें एक एक बोर्ड स्थापित किया है। दुखका विषय है कि सरकारकी इस मंशाका लाभ हम न उठावें। शहरोंमें तो इस प्रकारकी सभायें अवश्य ही होना चाहिए। ऐसी सभाओंका प्रचार होनेसे माता पिताओंकी शिक्षाके विषयमें रुचि बढ़ेगी।

लड़कियोंकी शिक्षाके विषयमें हमें बहुत कुछ करनेकी आवश्यकता है। जब तक मातायें सुशिक्षित न होंगीं तब तक देश और समाजका कल्याण न होगा। आनन्दका विषय है कि इस विषयमें अब हम सचेत हो चले हैं; परंतु सच पूछो तो हमने आज तक कुछ भी उन्नति नहीं की है। यदि सैकड़े पीछे हम एक या दो पुत्रियोंको शिक्षित कर सके तो मानना होगा कि हमने अभी तक भरे हुए समुद्रमें सिर्फ मन दो मन शक्कर ही डाली है। परन्तु याद रहे कि शिक्षाकी जरूरतको जब तक हम पूरी न करेंगे, उन्नतिके लिए चिल्लाना मानो सघन जंगलमें रोना ही है।

वह क्यों न निराश हो ?

ले०—बाबू जुगल किशोरजी, मुख्तार।

प्रबल धैर्य नहीं जिस पास हो,
हृदयमें न विवेक-निवास हो।
न श्रम हो, नहिं शक्ति-विकाश हो,
जगतमें वह क्यों न निराश हो ?

महाकवि वीरनन्दि।

मूलसंघ अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदायकी चार शाखायें हैं—नन्दि, सिंह, सेन और देव। इन शाखाओंकी भी प्रतिशाखायें हैं जो गण, गच्छ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। नन्दिसंघमें जो कई गण गच्छादि हैं, उनमेंसे एक 'देशीय' गण भी है। चन्द्रप्रभकाव्यके कर्त्ता महामना वीरनन्दि इसी देशीयं गणमें हुए हैं। ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने जो अपना थोड़ासा परिचय दिया है उससे मालूम होता है कि वे आचार्य अभयनन्दिके शिष्य थे और अभयनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि तथा दादा-गुरुका नाम भी गुणनन्दि था।

बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः
पतिर्मुनीनां गणभृत्समानः।

---

१ जैनसिद्धान्तभास्करकी चौथी किरणमें देशीयगणको देवसंघका गण बतलाया है; परन्तु बाहुबलिचरितके निम्न श्लोकसे मालूम होता है कि वह नन्दिसंघका ही भेद या नामान्तर थाः—

पूर्वं जैनमतागमाब्धिविधुव-
च्छ्रीनन्दिसंघेऽभव-
न्सुज्ञानर्द्धितपोधनाः
कुवलयानन्दा मयूखा इव।
सत्संघे भुवि देशदेशनिकरे
श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्-
नाम्ना मिथः कथ्यते ॥ ८७ ॥

२ छपी हुई, और दो हस्तलिखित प्रतियोंमें भी गुणनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि ही लिखा है। मालूम नहीं यह कहाँ तक ठीक है, कुछ पाठान्तर न हो!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सदग्रणीर्देशिगणाग्रगण्यो गुणाकरः
श्रीगुणनन्दिनामा ॥ १ ॥
गुणग्रामाम्भोधेः
सुकृतवसतेर्मित्रमहसा-
मसाध्यं यस्यासीन्न किमपि
महीशासितुरिव ।
स तच्छिष्यो ज्येष्ठः
शिशिरकरसौम्यः समभव-
त्प्रविख्यातो नाम्ना
विबुधगुणनन्दीति भुवने ॥ २ ॥
मुनिजननुतपादः
प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्ध-
स्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः ।
अभवदभयनन्दी
जैनधर्माभिनन्दी
स्वमहिमजितसिन्धु-
र्भव्यलोकैकबन्धुः ॥ ३ ॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमते-
र्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः
श्रीवीरनन्दीत्यभूत् ।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवन-
प्रख्यातकीर्त्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो
वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥

अर्थात् भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित-हर्षित करनेवाले मुनिसंघके स्वामी, गणधरकी तरह ज्ञानवान्, सज्जनोंमें श्रेष्ठताका मान पाये हुए, देशिगणमें प्रधान माने-जाने वाले और गुणकी खान ऐसे श्रीगुणनन्दि नामके एक आचार्य हुए। उन गुणसमुद्र सुकृतके स्थान गुणनन्दि आचार्य्यके लिए—राजाको जैसे कोई बात असाध्य या कठिन नहीं होती—कुछ कठिन न था। इन गुणनन्दिके प्रधान शिष्य दूसरे गुणनन्दि हुए, जो चन्द्रमाके समान शान्त-स्वभाव और पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे। जिनके चरणोंको मुनिजन नमस्कार करते हैं, मिथ्यावाद जिन्होंने नष्ट कर दिया है, जो सब श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं, जैनधर्मका प्रभाव बढ़ानेवाले हैं, जिन्होंने अपनी गंभीरतारूप महिमासे समुद्रको जीत लिया है और जो भव्यजनोंके एकमात्र बन्धु—हितकर्त्ता थे ऐसे अभयनन्दि मुनि उन दूसरे गुणनन्दि आचार्यके शिष्य हुए। उन भव्यजनरूपी कमलोंको विकसित—आनन्दित करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी और गुणोंके धारी बुद्धिमान अभयनन्दि आचार्यके शिष्य वीरनन्दी हुए, जिन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मयको अपने अधीन कर लिया था—जो अपनी रचनामें अपनी इच्छाके अनुसार अर्थगाम्भीर्य, शब्द-सौन्दर्य आदि गुण ला सकते थे और जिनकी कीर्ति संसारमें प्रख्यात थी उन वीरनन्दिके वचन कुतर्कका नाश करनेको अंकुश समान थे। सभाओंमें उन्हींके वचनोंकी विजय होती थी।

अपने विषयमें उन्होंने इससे अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु आजकलके पाठक एक प्रसिद्ध महाकविके सम्बन्धमें इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें अधिक नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य मालूम हो जाना चाहिए कि वे किस समय हुए हैं।

एकीभाव-स्तोत्रके कर्ता महाकवि वादिराजसूरिने अपना पार्श्वनाथकाव्य शक संवत् ९४७ में * बनाया है। इसके प्रारंभमें रचयिताने

* शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने
संवत्सरे क्रोधने,
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते
शुद्धे तृतीयादिने।
सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं
जैनी कथेयं मया,
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः
कल्याणनिष्पत्तये ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वके अनेक ग्रन्थकर्त्ताओंका स्तवन करते हुए लिखा है:—

चन्द्रप्रभाभिसम्बद्धा
रसपुष्टा मनः प्रियम् ।
कुमुद्वतीव नो धत्ते
भारती वीरनन्दिनः ॥ ३० ॥

इस श्लोकमें महाकवि वीरनन्दिके चन्द्रप्रभ-चरितका स्पष्ट उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि चन्द्रप्रभकाव्य पार्श्वनाथकाव्यकी रचनाके समयसे अर्थात् शक संवत् ९४७ से पहले बना है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने अपने गोम्मटसार ग्रन्थमें नीचे लिखी गाथायें कही हैं:—

णमिऊण अभयणंदिं
सुदसागरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं
पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥ ७८५ ॥
—कर्मकाण्ड, अ० ६ ।

णमह गुणरयणभूसण
सिद्धंतामियमहब्धिभवभावं ।
वरवीरणंदिचंदं
णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥ ८९६ ॥
—कर्मकाण्ड, अ० ८

जस्स य पायपसाए-
ण-णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो
णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥ ४३६ ॥
कर्मकाण्ड, अ० ४ ।

अर्थात्—अभयनन्दिको, शास्त्रसमुद्रके पार पहुँचे हुए इन्द्रनन्दि गुरुको और वीरनन्दि नाथको नमस्कार करके प्रकृति-प्रत्यय अध्यायको कहता हूँ ॥ ७८५ ॥ हे गुणरूप रत्नोंके भूषण चामुण्डराय! सिद्धान्तरूप अमृतसमुद्रके बढ़ाने-वाले वीरनन्दि चन्द्रमाको और निर्मल गुणोंके धारक इन्द्रनन्दि गुरुको नमस्कार करो ॥८९६॥ जिनके चरणोंके प्रसादसे वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि शिष्य अनन्त संसारसे पार हुए उन श्री अभयनन्दि गुरुको नमस्कार करता हूँ॥४३६॥

इन गाथाओंमें इन्द्रनन्दि वीरनन्दि और अभयनन्दि इन आचार्योंका उल्लेख है और अन्तिम गाथासे मालूम होता है कि इन्द्रनन्दि और वीरनन्दि ये दोनों अभयनन्दिके शिष्य थे। इन्द्रनन्दिको नेमिचन्द्रने अपने गुरुके रूपमें स्मरण किया है और साथ ही वीरन-न्दिको भी जगह जगह नमस्कार किया है। इससे भी जान पड़ता है कि वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि ये दोनों अभयनन्दि गुरुके सहाध्यायी शिष्य होंगे।

चन्द्रप्रभके कर्त्ता अपनेको भी अभयनन्दिका शिष्य बतलाते हैं, इससे जान पड़ता है कि नेमिचन्द्रने जिन वीरनन्दिका स्मरण किया है वे ही चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता हैं।

गोम्मटसार-कर्मकाण्डमें ३९६ नम्बरकी एक गाथा इस प्रकार है:—

वरइंदणंदिगुरुणो
पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा
सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥

अर्थात्—श्रीकनकनन्दिगुरुने इन्द्रनंदिगुरुके पास सारे सिद्धान्तको सुनकर सत्त्वस्थानका कथन किया।

इसमें जिन कनकनन्दिका उल्लेख है, वे संभवतः वे ही हैं जिनका वर्णन श्रवणबेल्गोलके ४७ वें शिलालेखमें है। शिलालेखमें लिखा है कि गुणनन्दि आचार्यके ३०० शिष्य थे, उनमें ७२ शिष्य बहुत ही बड़े सिद्धान्तशास्त्री थे और उन सबमें देवेन्द्र सैद्धान्तिक सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इन देवेन्द्र मुनिके शिष्य कलधौत-नन्दि या कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभकी प्रशस्तिके अनुसार गुणनन्दिके शिष्य अभयनन्दि और उनके वीरनन्दि हैं। जान पड़ता है उन्हीं गुणनंदिकी परम्परामें ही पूर्वोक्त कनकनन्दि हैं। अर्थात् गुणनंदिके ३०० शिष्योंमेंसे जिस तरह एक देवेन्द्र होंगे उसी प्रकार अभयनन्दि भी होंगे। देवेन्द्रके शिष्य कनकनन्दि हुए और अभयनन्दिके वीरनन्दि हुए।

आचार्य नेमिचन्द्रकी लिखावटसे जान पड़ता है कि वीरनंदि, इंद्रनन्दि अभयनन्दि, कनकनन्दि आदि सब उनके समकालीन थे। अतएव यदि नेमिचन्द्रका समय मालूम हो जाय तो लगभग वही समय वीरनन्दिका सिद्ध हो जायगा।

गोम्मटसारकी अन्तिम गाथाओंसे मालूम होता है कि नेमिचन्द्र आचार्यने यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी प्रेरणासे बनाया था और चामुण्डरायने स्वयं इस ग्रन्थकी एक कर्णाटकी-वृत्ति बनाई थी। अतः चामुण्डरायके समयमें ही नेमिचन्द्र हुए हैं, यह निर्विवाद है।

चामुण्डराय गंगवंशीय राजा राचमल्लके प्रधान मंत्री और सेनापति थे। राचमल्लके भाई रक्कस गंगराजने शक संवत् ९०६ से ९२१ तक राज्य किया है और शायद रक्कस गंगराजके बाद ही राचमल्लको सिंहासन मिला था। कनड़ीभाषाके प्रसिद्ध कवि रन्नने शक संवत् ९१५ में 'पुराणतिलक' नामक ग्रन्थकी रचना की है और उसने आपको रक्कस गंगराजका आश्रित बतलाया है। चामुण्डरायकी भी अपने पर विशेष कृपा रहनेका वह जिकर करता है। कर्णाटककविचरितके कर्त्ताने चामुण्डरायका जन्म शक संवत् ९०० के लगभग बतलाया है। इन सब बातोंसे शक संवत् ९०० के लगभग चामुण्डरायका समय सिद्ध होता है और यही समय नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका भी समझना चाहिए *।

ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि शक संवत् ९४७ में वादिराजने वीरनन्दिका उल्लेख किया है। अतएव इससे पहले शक संवत् ९०० या विक्रम संवत् १०३५ के लगभग वीरनन्दिका समय समझना चाहिए। विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके प्रारंभमें वे इस धरामण्डलको सुशोभित करते थे।

वीरनन्दि नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं। एक वीरनन्दि 'आचारसार' नामक यत्याचार-ग्रन्थके प्रणेता भी हैं; बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें पं० जवाहरलालजी शास्त्रीने उन्हें और चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ताको एक ही बतला दिया है; परन्तु यह भ्रम है। वे मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके शिष्य थे जिनका कि स्वर्गवास शक संवत् १०३७ में हुआ था। एक वीरनन्दिका जिकर श्रवणबेल्गुलके ४७ वें शिलालेखमें है; परन्तु वे महेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे।

महाकवि वीरनन्दिका केवल एक चन्द्रप्रभचरित नामका काव्य उपलब्ध है। उन्होंने इसके सिवाय और कोई ग्रन्थ रचा या नहीं, इसका पता नहीं।

इस ग्रन्थकी अन्तप्रशस्तिसे और आचार्य नेमिचन्द्रने उन्हें जिन शब्दोंमें स्मरण किया है उनसे, मालूम होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे—अखिल वाङ्मय पर उनका अधिकार था, वे सभाओंमें बोलनेवाले अच्छे वक्ता थे और सिद्धान्तशास्त्रोंके ज्ञाता भी थे।

कविने अपने स्थानादिका उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। तो भी जान पड़ता है कि वे कर्णाटकप्रान्तके ही रहनेवाले होंगे। क्योंकि नेमिचन्द्र, चामुण्डराय आदि सब उसी प्रान्तमें हुए हैं।

नोट—सम्पादकने यह लेख पं० उदयलालजी काशलीवाल द्वारा प्रकाशित हिन्दी—चन्द्रप्रभचरितकी भूमिकाके लिए लिखा था; उपयोगी समझकर हितैषीमें भी प्रकाशित कर दिया जाता है।

* बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें साहित्यशास्त्री पं० जवाहरलालजीने नेमिचन्द्रका समय शक संवत् ६०० सिद्ध किया है; परन्तु उसमें जो प्रमाण दिये गये हैं, वे सब ऊँटपटाँग हैं—उनमें कोई तथ्य नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहनशीलता और प्रेम।

(ले०—श्रीयुत बाबू भैयालालजी जैन।)

कोई भी मनुष्य जो अपने जीवनको इस संसारमें, सुखमय करना चाहता हो और अपना *वर्तमान शरीर छोड़नेके पश्चात् अपने जीवात्माको* सुखी बनाना चाहता हो, उसे अपने निकट तथा दूरके सम्बन्धियोंकी ओरसे, अपने पड़ोसियोंकी ओरसे तथा अन्य परिचित या अपरिचित लोगोंकी ओरसे, अपने मन्द प्रारब्धकर्मके उदयसे जो दुःख आ पड़ें उन्हें चिन्ता या विलाप किये बिना प्रसन्न मनसे सहन करनेका स्वभाव डालना चाहिए। इतना ही नहीं किन्तु जो अपनेको योग्य कारणके बिना ही दुःख देता हो न तो उससे द्वेष करना चाहिए और न बैर बाँधना चाहिए; न उसे शाप देना चाहिए और न किसीके समक्ष उसकी निन्दा करनी चाहिए। मनुष्योंका एक बड़ा भाग अज्ञानवश होनेके कारण भूलका पात्र है। जो दुःख मिलता है, वह अपने पूर्वके कोई दुष्कर्मोंके फलरूप प्राप्त होता है। ऐसा समझ कर अपनेको जो दुःख देता हो, उसपर मनमें किसी प्रकारका खेद न लाकर, विशुद्ध प्रीति रखना चाहिए। इस संसारमें सब प्रकारसे सुखी कोई भी नहीं है। सब मनुष्योंको दुःख भोगना ही पड़ता है। इसलिए दुःखके समय मनुष्य ऊपर कहे गये दो शुभ गुणोंका आचारण करे तो वह दुःखमें भी सुख और शान्तिका अनुभव कर सकता है।

सुखी होनेके लिए मनुष्यको पर्वतों तथा पृथ्वीकी स्थितिका विवेकपूर्वक अवलोकन करके उनके धैर्यका सावधानीसे अनुसरण करना चाहिए। कितने मनुष्य अपने प्रयोजनके लिए वृक्षोंकी जड़ तथा डाली काटते हैं; उनकी छाल निकालते हैं, तथा उनके ऊपर चढ़कर फल और फूलोंको तोड़ते हैं। किन्तु वे वृक्ष उनपर न तो लेश मात्र क्रोध करते हैं और न बैर ही बाँधनेका प्रयत्न करते हैं—सब दुःखोंको प्रसन्न मनसे सहन करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे ही लोग यदि धूपसे संतप्त हो उनकी छायामें बैठने आते हैं तो बिना किसी प्रकारकी आना-कानी किये बैठने देते हैं और अपनी छायाकी शीतलतासे उनके शरीरकी संतप्तताको दूर करते हैं। जो वृक्षको पत्थर या लकड़ी मारता है, उसे वह उल्टा फल फूल देता है। पत्थर, धातु अथवा रत्नोंके लिए कई लोग पर्वतको खोदते हैं; परन्तु वह उन खोदनेवाले लोगोंपर क्रोध न करके उल्टा उन्हें उनकी इच्छित वस्तुयें देकर सन्तोष करता है। पृथ्वीपर लोग कई अपवित्र वस्तुयें डालते हैं तथा स्वार्थवश होकर, स्थान स्थान पर उसका छेदन भेदन करते हैं, किन्तु वह उनपर किसी प्रकारका क्रोध नहीं करती वरन् उन्हें अमूल्य पदार्थ देकर प्रसन्न होती है। देखो, वृक्षादि जड़ कहलानेवाले पदार्थोंमें कितनी भारी सहनशीलता है! अपकार करनेवालोंके ऊपर भी उनकी कितनी भारी प्रीति रहती है!!

कहावत है कि "जितनी आकृतियाँ उतनी प्रकृतियाँ।" इस लिए इस जगत्में अपने ही समान सबका स्वभाव हो, यह सम्भव नहीं है। जिस प्रकार अपनी मुखाकृति पूर्णतया किसीसे नहीं मिलती, उसी प्रकार अपना स्वभाव भी सर्वांशमें किसीसे मिलना सम्भव नहीं है। जिसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावके साथ अपना स्वभाव न मिले और वह कदाचित् अपनी शक्ति भर हमको दुःख पहुँचावे, उस समय भी विवेकपूर्वक यदि हम अपने मनको उत्तम प्रकारसे समाधान कर सकें तो उस दुःखका बुरा असर होनेके बदले हमको सुखका अनुभव होगा। कोई भी मनुष्य, जो अपने मनमें सच्चा विवेक रखता है, उसे इस पृथ्वीपर लेश मात्र भी दुःखकी प्रतीति होना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत यदि उसके मनमें सच्चे विवेकका अभाव हो तो उसको प्राप्त हुए सुखमें भी दुःखका भान होना सम्भव है। वस्तुओंकी ऐसी दशा होनेसे हमें सर्वदा उत्तम सहवासमें रहना चाहिए, अवकाशके अनुसार उत्तम पुस्तकोंका श्रवण, पठन तथा मनन करना चाहिए और सर्वदा शुभ विचार करके, अपने हृदयमें सच्चे और उच्च प्रकारके ज्ञानकी वृद्धि करना चाहिए। ऊँचे ज्ञानकी वृद्धि होनेसे हमको प्रत्येक प्रतिकूल प्रसंगमें सहनशील होने तथा प्रसन्न रहनेका बल प्राप्त होगा। जिस मनुष्यको परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक प्राणीके हृदयमें परमात्माका वास है, ऐसा विचार कर, निर्दोष मार्गपर चलके, सब प्राणियोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिए। परमात्माकी कृपा सम्पादन करनेके इच्छुकको तो कीड़े मकोड़े सदृश क्षुद्र प्राणियोंपर भी विशुद्ध प्रीति-रखना चाहिए, फिर सब मनुष्योंपर और विशेषकर अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रोंपर सच्चा प्रेम करना चाहिए, इसमें तो कहना ही क्या है?

विवेकी मनुष्यको अपना हृदय संकीर्ण न रखकर जितना हो सके उतना उसे विशाल बनानेका प्रयत्न करना चाहिए, अर्थात् सब जगत् अपने स्वरूपके एक स्थानमें समा जाय इतनी विशालता हमको अपने हृदयकी करना चाहिए। जो मनुष्य अपने हृदयको इतना बृहत् बना सकता है वह सर्वदा प्रसन्नताका अनुभव करने के लिए, भाग्यशाली होता है। जिस प्रकार अपनेको दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार प्राणी मात्रको दुःख प्रिय नहीं है। ऐसा समझकर बुद्धिमान् पुरुष किसी भी प्राणीको दुःख नहीं देता और अपनी सामर्थ्यानुसार सब प्राणियों-को सुख हो ऐसे विचार और प्रवृत्तिका सेवन करता है।

यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि, इस संसारमें, प्रायः सब मनुष्योंको न्यूनाधिक दुःख भोगना पड़ता है। किसी भी प्रकारका दुःख आनेपर मनुष्यको अपने मनमें ग्लानि व चिन्ता न लानी चाहिए; और न किसीके साम्हने इस सम्बन्धमें विलाप करना चाहिए। अपनी मन्दप्रारब्धसे जो दुःख आपड़े, उसको प्रसन्न मनसे सहन करनेकी आदत डालना चाहिए। ऐसा स्वभाव बनानेसे लौकिक कार्योंमें भी बाधा नहीं पड़ती और पारलौकिकमें भी उन्नति होती है। चिन्ता और विलाप मनुष्यके तन और मन दोनोंकी शक्तिको क्षीण करते हैं। यह कदापि न भूलना चाहिए कि आये हुए दुःख-की निवृत्तिके लिए सज्जन लोग जो जो उपाय बतावें अथवा जो निर्दोष उपाय अपने मनमें उत्पन्न हों उनको कार्यमें परिणत करनेमें कोई हानि नहीं है। जैसे, उस प्रसंग पर सुपात्रको, यथाशक्ति दान देना, अथवा परम पवित्र परमात्माका ध्यान या स्मरण करना बहुत लाभदायक है। अपत्ति पड़ने पर शोकसे आपघात करनेका विचार करना मनकी निर्बलता है। मनमें आपघात करनेके विचार मात्रसे पापका बन्ध होता है। इसलिए ऐसे समय सत्संगमें रहकर, आपघातका विचार ही मनमें न आने देना चाहिए। दुःखके समय मनुष्य धैर्य न रखके आत्मघात करता है, परन्तु उसे स्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रण रखना चाहिए कि पापका फल भविष्यमें अवश्य भोगना पड़ता है, इस लिए मनुष्यको दुःख आ पड़ने पर और कोई उपायकी शरण लेना चाहिए । परन्तु ऐसा पाप भूलकर भी न करना चाहिए । अपने किये हुए पाप कर्मोंसे ही मनुष्यको दुःख भोगना पड़ता है । इस लिए उन दुःखोंको सहनशीलता और प्रसन्नतासे भोग लेनेमें ही उसका लाभ है, क्योंकि किसी लौकिक उपायसेतो वह उससे छुटकारा पा ही नहीं सकता ।

विवेकी मनुष्यको अपना हृदय सर्वदा जाग्रत रखना चाहिए । हृदयको इतना सहनशील बनावे कि चाहे आकाश टूट पड़े पर उसे लेश मात्र भी क्लेशानुभव न हो । मनुष्यको अन्य प्राणियोंकी ओरसे जो जो दुःख मिलते हुए प्रतीत हों, वे सब उसकी मंदप्रारब्धसे प्राप्त हुए हैं, उनका देनेवाला तो किसी कारणसे निमित्तरूप ही हुआ है, ऐसा मानना चाहिए । अपने दुःख देनेवाले तथा अपने शत्रु पर, जितना जितना मनुष्य दया तथा प्रेमकी दृष्टिसे देख सके तथा अपने मनमें उसपर क्रोधके भाव उत्पन्न न होने दे, उतना उतना उसे उन्नत होता हुआ जानना चाहिए ।

कोई भी मनुष्य जो इस लोक तथा परलोकमें सुख भोगना चाहता है, उसे चाहिए कि वह बहुत सहनशील बने । अर्थात् दुःख आपड़ने पर लेशमात्र भी दुखित न हो कर अपने मनमें प्रसन्नता रक्खे । अपने दुःखको कोई पाप संस्कारका उपभोग समझकर, अपने दुःख पहुँचानेवाले पर क्रोध न करके, उस पर दया तथा प्रेम रक्खे । बुरे प्रसंग पर सहनशीलता धारण करना तथा उपकार करनेवाले पर प्रेम करनेका कार्य आरम्भमें तो बहुत त्रासदायक जान पड़ेगा किन्तु दयासागर परमात्मा पर विश्वास रखके, जो कोई सर्वदा इस शुभ प्रयत्नको चालू रक्खेगा तो योग्य कालमें, वह उपयुक्त दोनों शुभ गुणोंको प्राप्त कर सकेगा; और उनका फलरूप वह इस लोक तथा परलोक दोनोंमें सुखानुभव करनेको भाग्यशाली होगा ।

'सांज वर्तमान' के पटेटी-अंकसे अनुवादित ।

सिंहान्योक्ति ।

ले०—श्रीयुत 'मीर'

जाने कीन्हों दमन है,
मत्त मतंगन मान ।
हाय ! दैववश सिंह सो,
परो पींजरे आन ॥
परो पींजरे आन,
श्वानके गन ढिग भूकें ।
विहसें ससा-सियार,
कान पै आके कूकें ॥
'मीर' बात है सत्य,
लोकमें कहिगे स्याने ।
का पै कैसो समय कबै
परि है को जाने ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय-वासना ।

(लेखक, श्रीयुत **बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय** बी. ए. ।)

मनुष्यके जीवनमें कषाय * सबसे नीची और बुरी चीज है । इससे नीची और बुरी और कोई प्रवृत्ति नहीं है । कषायरूपी नरक–कुण्डमें राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, माया, द्रोह, मात्सर्य, प्रतीकार, मिथ्या अपवाद, मिथ्या भाषण, हिंसा, चौर्य्य, अदया, संदेह, ईर्ष्या आदि दुर्गुणोंका बास रहता है । ये दुर्गुण मनुष्यके मनरूपी वनमें सदा भ्रमण किया करते हैं । इनके अतिरिक्त शोक, दुःख, संताप, पश्चात्तापकी भीषण भयंकर मूर्तियाँ भी मन पर सदा अधिकार जमाये रखती हैं । ऐसे अंधकारमय जगत्के निवासी वे अज्ञानी जन होते हैं जिन्हें शांतिकी पवित्रता और परमात्मप्रकाशके परमानंदसे अनभिज्ञता होती है जो सदा उनके ऊपर दैदीप्यमान रहता है परंतु उनके लिए कुछ भी लाभदायक नहीं; कारण कि उनकी दृष्टि उस पर नहीं पड़ती, किंतु सदा भूमिकी ओर भौतिक पदार्थों पर लगी रहती है ।

हाँ, ज्ञानी पुरुष ऊपरको दृष्टि उठाकर देखते हैं । उन्हें इस कषायरूपी जगतसे संतोष नहीं होता । वे ऊपरके शांतिमय जगतकी ओर चढ़ते हैं । उसका प्रकाश और वैभव पहले तो उन्हें बहुत दूर मालूम होता है, परंतु ज्यों ज्यों वे ऊपरको चढ़ते जाते हैं वह निकट और निकटतर होता जाता है ।

कषाय (वासना) का क्षेत्र सबसे नीचा है । उससे नीचा और कोई स्थान नहीं है । उसमें पड़े हुए जीवोंको अनेक कष्टोंको भोगना पड़ता है । जिनको अपना हित अभीष्ट है, उन्हें उसमेंसे निकलकर ऊपर ऊपर चढ़ना उचित है । उन्नति–मार्ग कुछ कठिन या दूर नहीं है । बहुत ही सहज और पास है । अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लो, अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें करलो बस उन्नति-मार्ग मिल जायगा । जिस मनुष्यमेंसे स्वार्थकी गंध निकल गई है, जिसने अपनी इच्छाओंको वशमें करना और अपने चंचल मनपर अधिकार प्राप्त करना शुरू कर दिया है, उसने उन्नत्ति मार्गको प्राप्त कर लिया है ।

कषाय मनुष्य जातिका शत्रु है, शांतिका घातक है और आनंदका नाशक है । कषायोंके वशीभूत होकर मनुष्य नीचसे नीच और अधमसे अधम काम करनेपर उतारू हो जाता है । कषाय दुखका मूल है और पापकी खानि है ।

मनुष्यके अतरंगमें स्वार्थकी उत्पत्ति, ईश्वरीय नियमोंकी और परमात्मगुणोंकी अज्ञानता और शान्त और पवित्र मार्गकी अनभिज्ञताके कारण होती है । कषाय अंधकाररूप है । इसकी बढ़ती वहींपर होती है जहाँ ब्रह्मज्ञानका अभाव है । जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ इसका प्रवेश नहीं होसकता । ज्ञानी पुरुषके मनसे अज्ञान अंधकार नष्ट होजाता है । विशुद्ध हृदयमें वासनाका अभाव रहता है ।

कषाय प्रत्येकरूप और प्रत्येक अवस्थामें दुःख, आपत्ति और अशांतिका कारण है । जिस

---

* कषायसे तात्पर्य यहाँ वासना, मनोविकारसे है । अँगरेजीके Passion से जो बोध होता है, वही यहाँ कषायसे समझना चाहिए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार आग्नि बड़ी बड़ी विशाल इमारतोंको देखते देखते जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार कषायकी अग्नि मनुष्योंको भस्म कर देती है और उनके कार्योंको नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है।

यदि तुम्हें शांतिकी अभिलाषा है, तो कषायको क्षय कर दो। ज्ञानी पुरुष कषायोंको शमन करते हैं, परन्तु मूर्खजन कषायोंके वशीभूत होते हैं। जिन मनुष्योंको ज्ञान और बुद्धिकी चाह होती है, वे मूर्खता और अज्ञानतासे दूर रहते हैं। शान्तिका इच्छुक शान्तिके मार्गको ग्रहण करता है और ज्यों ज्यों वह उस मार्ग पर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों कषाय, दुःख और निराशाके अंधेरे गुप्त स्थानको पीछे छोड़ता जाता है।

ज्ञान और शांतिके प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको पहले कषायके स्वरूपको जान लेना उचित है। जिस समय उसका वास्तविक ज्ञान हो जायगा उसी समयसे उसको दूर करना और उससे मुक्त होना मनुष्य शुरू कर देगा। देरी उसी समय तक है, जब तक मनुष्य स्वार्थमें लीन है और कषायके आधीन है।

कषायसे केवल यही नहीं होता, कि मनुष्य क्रोधी अथवा लोभी होता है, किंतु उसके वशीभूत हुआ मनुष्य अपनेको उच्च और दूसरोंको तुच्छ समझने लगता है। दूसरोंमें सदा अवगुण निकाला करता है और उन्हें स्वार्थी और मायावी बताया करता है। दूसरोंकी निंदा करनेसे, दूसरोंको स्वार्थी बनानेसे मनुष्य अपने स्वार्थको नहीं त्याग सकता। स्वार्थसे बचनेके लिए अपने आपको पवित्र करना मनुष्यका काम है। दूसरों पर दोषारोपण करनेसे शांतिमार्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती। शांतिमार्गके लिए स्वार्थत्याग, इंद्रिय-दमन और आत्मसंयमकी आवश्यकता है। दूसरोंके स्वार्थादि अवगुणोंको दूर करानेकी चेष्टामें लगे रहनेसे हम कषायसे रहित नहीं हो सकते; किंतु अपने अवगुणोंके दूर करनेसे हमें स्वाधीनताकी प्राप्ति होती है। वही मनुष्य दूसरोंपर विजय प्राप्त कर सकता है, उनको अपने वशमें कर सकता है जिसने अपने ऊपर विजय प्राप्त करली है। ऐसा मनुष्य दूसरोंको कषायसे अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभसे वशमें नहीं करता, किंतु प्रेम और प्रीतिसे करता है।

मूर्खजन अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निंदा किया करते हैं; परंतु बुद्धिमान् मनुष्य अपनी निंदा और दूसरोंकी प्रशंसा करते हैं। शांति-मार्ग मनुष्योंके बाहिरी जगतमें नहीं है, किंतु विचारोंके अंतरंग संसारमें है। दूसरोंके कार्योंमें परिवर्तन करानेसे इसकी प्राप्ति नहीं होती, किंतु इसकी प्राप्ति अपने निजी कार्योंके विशुद्ध और पवित्र बनानेसे होती है।

कषाययुक्त मनुष्य प्रायः दूसरोंके सुधारनेमें लगा रहता है, परंतु ज्ञानी पुरुष अपनेको सुधारनेकी धुनमें रहता है। संसारको सुधारनेके लिए पहले अपने आपको सुधारना आवश्यक है। अपना सुधार केवल विषयवासनाओंके दूर करने पर ही समाप्त नहीं हो जाता, किंतु इसके लिए उस प्रत्येक विचारका—जिसमें मानका तनिक भी अंश है—तथा स्वार्थका सर्वनाश कर देना होता है। इससे ऊँचे चढ़कर पूर्ण विशुद्धतासे पहले एक प्रकारका शल्य और होता है, उसे भी दूर करना जरूरी है।

मनुष्यका जीवन एक प्रकारका पहाड़ है जिसकी तलहटी कषाय है और शान्ति चोटी है। कषायको घटाता घटाता ही मनुष्य शान्तिके उच्च शिखिर पर चढ़ सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायमें शक्ति होती है, परंतु शक्ति कुमार्गकी ओर लगी रहती है। उससे दुःख होता है। मनमें सदैव इच्छायें उत्पन्न हुआ करती हैं। यदि वे शुभरूप होती हैं तो सुखकर होती हैं और यदि अशुभरूप होती हैं तो दुःखकर होती हैं। इच्छायें एक प्रकारकी जलती हुई तलवारें हैं जो स्वर्गके द्वार पर रक्षकका काम कर रही हैं। मूर्खोंको वे जलाकर भस्म कर डालती हैं और बुद्धिमानोंको स्वर्गमें दाखिल कर लेती हैं।

वह मनुष्य मूर्ख है जो अपनी अज्ञानताकी सीमाको नहीं जानता, जो केवल अपने विचारोंका गुलाम है और जो सदा अपनी इच्छाओंके अनुसार काम करता है। इसके विपरीत वह मनुष्य बुद्धिमान है, जो अपनी अज्ञानताको जानता है, अपने विचारोंकी निरर्थकताको समझता है और जो अपने कषायोंको शमन करता है।

मूर्ख अज्ञानताके नीचेसे नीचे कूपमें गिरता जाता है परंतु बुद्धिमान ज्ञानके ऊँचे ऊँचे क्षेत्रमें प्रवेश करता जाता है। मूर्ख इच्छा करता है, कष्ट उठाता है और मर जाता है; परंतु बुद्धिमान उच्च अभिलाषा रखता है, प्रसन्न होता है और जीवित रहता है।

आत्मोन्नतिका अभिलाषी वीर योद्धा मानसिक उन्नति करता हुआ ज्ञानप्राप्तिमें लीन होकर शांतिके उच्चतम शिखरकी ओर दृष्टि लगाये हुए, ऊँचे ऊँचे चढ़ता जाता है और एक दिन उस अभीष्ट स्थानपर पहुँचकर परमसुख-परमानंदका भोग करता है।*

---

* जेम्स एलन की Passion to Peace नामक पुस्तकके Passion शीर्षक निबंधका भावानुवाद।

जीवन और मृत्यु।

वास्तवमें जीवन और मृत्यु भिन्न भिन्न नहीं हैं—एक ही व्यापारके भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। एक रुपयेके ऊपर दोनों ओर जैसे भिन्न भिन्न छापें रहती हैं, उसी तरह जीवन और मृत्यु ये दोनों व्यापारकी जुदी जुदी अवस्थायें हैं।

जगत्में यदि कोई पाप है तो वह दुर्बलताके सिवाय और दूसरा नहीं है। इस लिए सब प्रकारकी दुर्बलताओंको त्यागो। दुर्बलता ही मृत्यु है, दुर्बलता ही पाप है।

जीवनका अर्थ उन्नति और उन्नतिका अर्थ हृदय—विस्तार है। हृदय—विस्तार कहो या प्रेम-भावना कहो, दोनों एक ही वस्तु हैं। मतलब यह कि प्रेम ही जीवन है और प्रेम ही जीवन-नियामक वस्तु है। स्वार्थान्धताको मृत्यु समझना चाहिए। जहाँ स्वार्थवासना होती है—वहाँ जीवन टिक ही नहीं सकता।

जीवनका नाम विस्तार है और मृत्युका नाम संकोच; अथवा प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु। जिस दिनसे हम संकुचित बनने लगेंगे और अन्यान्य मनुष्योंका तिरस्कार करने लगेंगे उसी दिनसे हमारी मृत्युका प्रारंभ होगा। जब तक हमारा हृदय उदार और विशाल रहेगा तब तक मृत्युकी शक्ति नहीं है कि वह हमारा स्पर्श कर सके।

स्वामी विवेकानन्द।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाँधीका सत्याग्रह-आश्रम ।

थोडे दिन पहले मद्रासमें श्रीयुत मोहनचन्द्र कर्मचन्द्र गाँधीका जो महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ था, उसका सारांश यह है-

आज मैं अपने उस आन्तरिक भावको बतलाना चाहता हूँ जिसे मैंने अपने हृदयमें बहुत दिनसे स्थान दे रक्खा है और जो मेरे लिए सब कुछ है । और वह है क्या ? वह है अपने उस आश्रमके विषय पर विचार करना जिसे मैं भारतमें कहीं न कहीं स्थापित करना चाहता था, और जिसे वे बहुतसे विद्यार्थी जो मुझे पारसाल मिले थे जानते भी होंगे। सर्व्वसाधारणके कामोंमें योग देकर जो कुछ भी मैंने अनुभव किया है वह बस केवल यही है कि हमारे लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है चरित्र-गठनकी, हमारे लिए ही नहीं बल्कि हर जातिके लिए, यदि वह अपना आस्तित्व संसारमें कायम रखना चाहती है ।

सत्यव्रत ।

और इसी चरित्रगठनके लिए इस आश्रममें कुछ नियमोंका पालन कराया जायगा और उन सबमें सबसे प्रथम है सत्यकी प्रतिज्ञा । यह सत्य वह सत्य नहीं है जिसे हम आम तौरसे आज दिन व्यवहारमें ला रहे हैं, किन्तु इस सत्य द्वारा हमें अपने जीवनको सत्यमय बनाना होगा। दृष्टान्तके लिए बहुत दूर न जाइए । प्रह्लादको ही लीजिए और देखिए कि उसने केवल सत्यहीके कारण अपने पिता पर विजय पाई थी। इस आश्रमका यह नियम होगा कि जिस बातको हम 'नहीं' करना चाहते, उसके विषयमें हम स्पष्ट रीतिसे नहीं कर देंगे, चाहे नतीजा कुछ भी क्यों न हो ।

अहिंसा-व्रत ।

दूसरा नियम है अहिंसाकी प्रतिज्ञा । यों तो अहिंसाका अर्थ हिंसा न करना ही है किन्तु यदि आप इसके तह तक जायँ तो आपको पता चलेगा कि अहिंसाका अर्थ है किसीको किसी प्रकारका भी दुख न देना, यहाँ तक कि उस व्यक्तिके विषयमें भी, जो अपनेको तुम्हारा शत्रु मानता हो, कोई भी बुरा विचार हृदयमें न लाया जाय। जिसने अहिंसाके मर्मको समझ लिया है उसके हृदयमें शत्रुभावका स्थान ही नहीं, और इस सिद्धान्तके अनुसार मान मर्य्यादा तथा देशकी रक्षा तकके लिए न हत्याओंके लिए स्थान है और न उत्पातहीके लिए । अहिंसाका यह सिद्धान्त हमसे कहता है कि हम उन आदमियोंके हाथोंमें जो अत्याचार कर रहे हों, आत्म-समर्पण करके उनके मानकी रक्षा करें जिनका भार हमारे ऊपर है, और इस काममें उस बलसे शारीरिक और मानसिक बलकी अधिक आवश्यकता है जिसकी आवश्यकता घूँसेका उत्तर घूँसेमें देनेमें होता है। मानलो, तुममें शारीरिक बल है, तुमने उसका प्रयोग किया, तो जानते हो कि आगे क्या होगा ? क्रोध और घृणासे पागल विपक्षी तुम्हारे इस प्रकारके मुकाबलेसे और भी पागल हो जायगा, और जब वह तुम्हें समाप्त कर चुकेगा तो उसकी उद्दण्डता तुम्हारी धरोहर पर झपटेगी । परन्तु, यदि तुम उसका इस प्रकारका मुकाबला न करो, केवल अपने स्थान पर घूँसा खानेके लिए अपनी धरोहर और अपने विपक्षीके बीचमें जमे रहो, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि विपक्षीकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारी शक्ति तुम्हारे ऊपर खर्च हो जायगी और तुम्हारी पवित्र धरोहर ज्योंकी त्यों बनी रहेगी ।

ब्रह्मचर्य्य-व्रत ।

तीसरी प्रतिज्ञा है ब्रह्मचर्य्य की । जिनमें जातीय-जीवनकी लहर है, जो जातिकी सेवा करना चाहते हैं वे ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण करें । यदि उनका व्याह हो गया हो तो भी कोई हर्ज नहीं । विवाहसे तो घनिष्ठताका एक ऐसा सम्बन्ध हो जाता है कि स्त्री और पुरुष कभी और किसी जन्ममें एक दूसरेसे पृथक् न हों, क्या आवश्यकता है कि इस बन्धनमें रति–कार्य्य अनिवार्य्य ही हो !

स्वादोंका संयम ।

चौथी बात है चिटोरापन छोड़ना, रुचिको अपने वशमें करना । इसकी भी वैसी ही प्रतिज्ञा करनी होगी जैसे औरोंके लिए, और यद्यपि इसका वशमें लाना तनिक कठिन है किन्तु यह हो जाता है बड़ी आसानीसे । आप स्वादके गुलाम न बनिए । बस, फिर सीधे ही पिण्ड छूट जायगा । मैं अभी विक्टोरिया होस्टेल देख कर आ रहा हूँ । वहाँ मैंने बहुतसे भोजनालय देखे और वे केवल स्वादोंके लिए ही इतनी अधिकतासे हैं । जबतक कि हम उन खाद्य पदार्थों पर सन्तुष्ट न होंगे जिनके ग्रहण न करनेसे ही हमारा जीवन नहीं चल सकता, तबतक चटोरेपनकी आदत नहीं जा सकती । खाया तो केवल प्राणरक्षा और शरीररक्षाके लिए ही जाता है, और जानवर भी इसी लिए खाते हैं, फिर क्या कारण है कि वे इतने चटोरे नहीं दिखलाई देते ? बस, यही कि वे अपने जीभके गुलाम नहीं । उनकी जीभ उनके काबूमें है ।

चोरी न करना ।

पाँचवी बात है चोरी न करनेकी । यह वह चोरी नहीं कि किसीका माल हड़प बैठें । किसी एक ऐसी वस्तुको लेना भी, जिसकी अपने पास तत्काल कोई आवश्यकता नहीं और यदि वह दूसरेके पास रहे तो उसका बहुत कुछ कष्ट दूर हो जाय, एक प्रकारकी चोरी ही है । प्रकृति माता इतनी चीजें पैदा करती हैं कि यदि प्रत्येक आदमी अपनी आवश्यकतासे अधिक उन्हें न ले; तो संसारमें गरीबी रह न जाय, और कोई भी आदमी भूख न मरे । और जब तक यह असमानता दूर न होगी तब तक मुझे कहना पड़ता है, कि हम सब चोर हैं । मैं 'सोशियालिस्ट' नहीं हूँ और इसलिए धनवानोंको धनसे वंचित नहीं करना चाहता, परन्तु जो लोग देशके अधपेट रहनेवाले करोड़ों आदमियोंका दुख दूर करना चाहते हैं उन्हें इस सिद्धान्तके अनुसार कार्य करना पड़ेगा ।

स्वदेशी–व्रत ।

छट्ठी प्रतिज्ञा है स्वदेशीकी । हर एक मनुष्यमें स्वदेशाभिमान होना चाहिए । यदि एक व्यापारी बम्बईसे तुम्हारे पास इस गरजसे आवे कि तुम उसे आश्रय दो, तो जब तक तुम्हारे यहाँ उसी प्रकारका व्यापारी मौजूद है तब तक उसे छोड़ कर तुम्हें बम्बईके व्यापारीकी मदद करना उचित नहीं । स्वदेशीके विषयमें मेरी यही राय है । मेरा यही कहना है कि यदि तुम्हारे गाँवका नाई तुम्हारी हजामत बनानेके लिए तुम्हारे द्वार पर आता हो तो कोई कारण नहीं कि तुम उससे तो हजामत न बनवाओ और जरासी भड़कीली शानके लिए शहरसे आनेवाले नाईके पास दौड़ो । तुम अपने उस नाईको योग्य बनाओ यदि वह पहलेसे योग्य नहीं है । उसमें वह बात पैदा करो जो एक शहराती नाईमें तुम देखते हो । और उसको उस समय तक, जब तक कि तुम पूरी तौरसे अपने कामके बिल्कुल अयोग्य न पा लो, हर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिज हरागिज अपने पाससे, अपने आश्रयसे, पृथक् न करो ।

निर्भयताका व्रत ।

देश भरमें मैंने खूब घूम कर देखा कि शिक्षित भारत पर भय छाया हुआ है । लोगोंमें हृदयकी बातें खुल्लमखुल्ला कहनेका साहस नहीं है । गुपचुप चहारदीवारीके भीतर हम अपना मत प्रकट करते हैं, परन्तु लोगोंके सामने नहीं । जो खुल्लमखुल्ला कहेंगे उसे हृदयसे न चाहेंगे । यह हाल सभीने देखा होगा । मैं तुमसे कहता हूँ कि ईश्वरके सिवा किसीसे डरनेकी आवश्यकता नहीं, यदि तुम सत्यका किसी भी रूपमें पालन करना चाहते हो तो निर्भय होना पड़ेगा ।

अछूतोद्धार ।

आठवीं बात है अछूतोंके विषयमें । यह रोग हिन्दुओंमें बहुत बेतरह घुस पड़ा है । हम अछूतोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करके अत्यन्त पापके भागी बन रहे हैं । तुममें इतनी शिक्षा ग्रहण करने पर भी यह कमजोरी ऐसी ही बनी है तो मैं कहता हूँ कि तुम्हारा यह ज्ञानोपार्जन करना, यह पढ़ना और लिखना बिल्कुल फिजूल है । यह सच हो सकता है कि तुम शिक्षा विदेशी भाषामें ग्रहण करनेके कारण अपने सच्चे भावोंको अपने उन कुटुम्बियोंमें, जिनके जंजीरमें तुम बँधे हो, न डाल सको । पर इसी लिए हमने इस आश्रमकी शिक्षाका माध्यम देशी भाषा रक्खा है । और इसमें जितनी देशी भाषाओंकी शिक्षा हो सकेगी दी जायगी और वह भी जो विदेशीय भाषाके शिक्षाके लिए जितने कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे कमहीमें ।

राजनीति ।

इसके लिए तुम्हें उस समय तैयार होना चाहिए जब उपर्युक्त नियमोंको भली प्रकार दृढ़तापूर्वक निबाह लो । धर्मसे बिछुड़ी हुई राजनीतिके कोई अर्थ नहीं होते । यदि देशके सभी विद्यार्थी राजनैतिकक्षेत्रकी ओर झुक जाँय तो यह कोई अच्छा चिह्न नहीं, परन्तु इसके ये अर्थ नहीं है कि हम विद्यार्थी-जीवनमें राजनीति न सीखें । राजनीति भी हमारे जीवनका एक अंग है । राष्ट्रीय संस्थाओं और राष्ट्रीय-विकासके समझनेके लिए प्रत्येक आश्रमवासी बालकको राजनैतिक संस्थाओं और देशमें प्रसरित नये भावों और नये जीवनकी बातें बतलाई जाती हैं, परन्तु साथ ही हमें हृदय और बुद्धिके धार्मिक-विश्वासके अक्षयप्रकाशकी भी आवश्यकता है । आजकल तो युवकोंकी यह हालत है कि जहाँ विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ कि फिर वे मिट्टीमें मिल गये । टुटपुंजिया नौकरी कर ली, थोड़ी तनख्वाहोंमें फँस गये । वे परमात्माको नहीं जानते, ताजी हवा और ताजे उजेलेका उन्हें क्या पता, उन्हें क्या पता उस तेज-पूर्ण स्वाधीनताका जो इन नियमोंके पालनसे प्राप्त होती है, जो मैं तुम्हें बतला चुका ।

अन्तमें ।

मैं तुमसे आश्रममें आनेके लिए नहीं कहता क्योंकि उसमें स्थान ही नहीं । हाँ अलग अलग आश्रमका-सा जीवन व्यतीत करो । मेरी बातोंमेंसे जो बात तुम्हें पसन्द आई हो उसीके अनुसार काम करो । यदि तुम खयाल करते हो कि यह एक पागलकी बातें हैं तो स्पष्ट कह दो, मुझे तुम्हारे इस फैसलेसे कोई आश्चर्य न होगा । (प्रतापसे उद्धृत)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुयानोंका इतिहास।

(ले० पं० शिवसहाय चतुर्वेदी।)

बहुत पुराने समयसे मनुष्यके हृदयमें आकाशमें घूमनेकी इच्छा चली आ रही है। प्रत्येक जातिके इतिहासमें इसके कई स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। हिन्दुओंके महाकाव्य रामायणमें लिखा है कि रामचन्द्रजी पुष्पक विमानके द्वारा आकाशमार्गसे स्वदेशको लौटे थे। ग्रीक पुराणोंमें लिखा है—फ्रिक्माश और हेल अपनी सौतेली मा इनोरके दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिए एक सोनेके रोमोंवाले मेष (भेड़) पर चढ़ कर स्वर्गलोकको भाग गये थे। जैनग्रंथोंमें जीवन्धर स्वामीकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। उनके पिता सत्यंधरने अपने मंत्री काष्ठाङ्गारके द्वारा अपने वंशच्छेद होनेके भयसे अपनी गर्भवती पत्नीको मयूरयंत्रमें बिठाकर आकाशमार्गसे उड़ा दिया था। जीवंधरचरितसे मालूम होता है कि यह यंत्र मोरके आकारका होता था और शायद चावीके बलसे चलाया जाता था। अँगरेजी ग्रंथोंमें भी ऐसी बहुतेरी कहानियाँ पाई जाती हैं। जाटलेंडके राजा निडाङ्गके आदेशसे उनके नौकरोंने जब बयेलेंड नामके एक अपराधीके दोनों पैरोंके पंजे काट डाले थे, तब वह राजाके अत्याचारोंसे रक्षा पानेके लिए एक प्रकारका जामा तैयार करके उसकी सहायतासे अपने देशको उड़ गया था। आरब्य उपन्यासोंके उड़नेवाले गलीचे और पारस्य उपन्यासोंके उड़नेवाले सन्दूकोंकी कहानियाँ सभी जानते हैं। इस तरह प्रत्येक जातिके पौराणिक ग्रन्थोंमें आकाशभ्रमणकी दो चार कहानियाँ अवश्य मिलती हैं! इन सब बातोंसे जाना जाता है कि मनुष्योंके मनमें आदिम कालसे पक्षियोंके समान आकाशमें भ्रमण करनेकी इच्छा चली आती है और वायु मंडलपर प्रभुत्व जमानेके लिए बहुतसे काल्पनिक उपायोंकी उद्भावना करके उन्होंने बहुत कुछ परितृप्ति भी प्राप्त की है। एक समयका उक्त काल्पनिक विषय कालक्रमसे आज सत्यके रूपमें बदल गया है—मनुष्योंका बहुत दिनोंका परिश्रम सफल हो गया है। मनुष्यने साधनाके बलसे न जाने कितने बाधा विघ्नोंको हटाकर, कितने जीवनसंग्रामोंमें विजयलाभ करके सफलता पाई है—संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है। मनुष्यने किस तरह क्रम क्रमसे प्राकृतिक—शक्तियोंको अपने वशमें किया है, इसके रहस्यमय इतिहासकी खोजपर मनुष्य सदैव उत्सुकता प्रगट करता रहेगा। मनुष्यके कल्पना-जगतसे बाहर होकर व्योमयानने किस प्रकार वास्तविक स्वरूप धारण किया और मनुष्योंके परिश्रमको सफल किया—इसका विवरण बहुत ही कौतूहल बढ़ानेवाला है।

इटली देशके लेखक 'लियोनार्दो दा भिञ्चि' ने सबसे पहले (सन् १४५२–१५१९) अपनी ग्रंथावलीमें आकाशमार्गमें भ्रमण करनेका एक उपाय लिखा था। कहा जाता है कि उसीने सबसे पहले कल्पनाकी वस्तुको वास्तविकरूप देनेका उपाय लिखा है। वह लिखता है—पक्षियोंके समान कई एक पंखे मनुष्यके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीरमें लगा कर उन सबको हाथ और पैरोंके द्वारा संचालित करनेसे शून्य पथमें उड़ा जा सकता है। ऊपर चढ़नेके लिए पंखों (डानों) को फैली हुई दशासे सिकुड़ाना पड़ता है और फिर नीचे उतरनेके लिए सिकुड़े हुए पंखोंको फैलाना पड़ता है। कई लोगोंने कागजकी सहायतासे उपरिलिखित प्रणालीके अनुसार परीक्षा की; परन्तु कोई कृतकार्य नहीं हुआ। इसके कछ समय बाद ही फाउष्ट वेराञ्जिने नये उपायोंके द्वारा इस कार्यमें कई अंशोंमें सफलता प्राप्तकी। चार बराबरीके लकड़ीके टुकड़ोंको चतुर्भुजाकारमें मजबूत कस देनेसे और सघन कपड़ेको उसके चारों ओर संयुक्त कर देनेसे छाताके आकारका एक बेलून (गुब्बारा) बन जाता है। ऐसे बेलून पर चढ़कर वह वेनिस नगरके एक बहुत ऊँचे स्तंभ परसे जमीन पर उतरा था।

सन् १६७८ ई० में वेसनिये नामके एक व्यक्तिने अपने दोनों कधों पर दो समानान्तर लकड़ीके डंडे रखकर उनके दोनों छोरों पर पुस्तकके समान दो परस्पर मिले हुए समतल तख्ते लगा दिये। उक्त दोनों लकड़ीके डंडे ऊपर नीचे करनेसे वे समतल तख्ते एक बार खुलते और एक बार बंद होते थे। उसने इसी यंत्रके डानोंको बारबार खोल और बंद करके उड़नेकी चेष्टा की थी।

कुछ दिनोंके बाद मार्कुई दी वाकेविलने इस यंत्रमें सुधार किया। वह सन् १७४२ ई० में अपने ऊँचे भवनकी छतपरसे उस पर बैठा और समीपवर्ती एक उपवनको लाँघता हुआ सीन नदीके पास जाकर उतरा। इस तरह वह इस विषयमें औरोंकी अपेक्षा अधिक कृतकार्य हुआ।

इस समय तक आकाशभ्रमणके लिए जितने यंत्र बने थे, वे सब पक्षियोंके पंखोंके अनुकरण पर निर्माण किये गये थे।

सन् १६७० ई० में फान्सिस्को डिलानाने आकाश-नौका या हवाई-जहाज प्रस्तुत करनेके लिए एक उपाय लिखा। उसके मतसे चार वायुशून्य ताँबेके गोलोंको एक हल्की नौकाके ऊपरी किनारों पर लकड़ी आदिकी मूठमें लगा कुछ ऊँचाई पर रखना चाहिए और नाव पर पाल भी तान देना चाहिए; ऐसा करनेसे गोले वायुशून्य होनेके कारण ऊपर उठनेकी चेष्टा करेंगे। ताँबेके गोले कितने बड़े होना चाहिए, इसके लिए उसने हिसाब लगा कर देखा कि २५ फुट व्यास और $\frac{1}{२२५}$ इंच मुटाईके गोलोंकी सहायतासे बहुत अच्छी तरह काम निकल सकता है। ऐसे चार वायुशून्य गोले प्रायः १५ मन वजन खींच कर ऊपर ले जा सकते हैं। किन्तु इतने पतले गोलोंका वायुके दबाबसे एकदम फट जाना बहुत संभव था। मि० डानने अनेक युक्तियाँ देकर इस आपत्तिको दूर करनेकी चेष्टा की, परन्तु लोगोंको उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

सन् १७८३ ई० में लियन नगरके समीपवर्त्ती किसी गाँवमें रहनेवाले एक कागजके व्यापारीके दो पुत्र स्टीफेन और योसफ मेंटगलफियेने इस बातकी ओर लक्ष्य देकर अनुसन्धान करना प्रारंभ किया कि वायुमंडलमें मेघ किस तत्त्वके आधार पर रहते हैं। उन्होंने सोचा कि यदि एक थैलीमें किसी वायवीय पदार्थको भरकर हवामें छोड़ दें तो वह मेघके समान आकाशमें तैरती रहेगी। पहले पहल उन्होंने भाफकी सहायतासे परीक्षा करके देखा; परन्तु इसमें वे सफलमनोरथ न हुए। फिर उन्होंने एक थैलीको अग्निके मुँहपर रखकर उससे उठते हुए धुएँ और गैस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उसको भरकर हवामें छोड़ दिया और देखा कि वह वायुमंडलमें कुछ दूर तक गई । फिर उन्होंने और भी प्रशस्त प्रणालीके अनुसार उक्त परीक्षा करना प्रारंभ किया और एकबार १०५ फुट परिधिवाली एक कपड़ेकी थैलीको घासके घुएँसे परिपूर्ण करके हवामें छोड़ दिया। थैली बहुत ऊँचे तक उड़ी, हवामें १० मिनिट तक स्थिर रही और फिर १॥ मीलकी दूरी पर जा गिरी । ज्योंही यह खबर चारों और फैली त्यों ही भिन्न भिन्न लोगोंने भिन्न भिन्न रीतियोंसे परीक्षा करना प्रारंभ कर दिया । इसके कुछ समय पहले सन् १७७६ ई० में सबसे हलके गैस हैड्रोजनका आविष्कार हो चुका था । जब स्टीफेन और योसफकी परीक्षाका समाचार पारी पहुँचा, तब विज्ञानवेत्ता चार्लस साहबने कहा कि शीतल वायुकी अपेक्षा गरम वायु हलकी होती है और वह हमेशा ऊपर उठनेकी चेष्टा किया करती है, इस लिए किसी व्योमयानमें हैड्रोजन भरकर परीक्षा करनेसे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है । अतः १२ फुट व्यासवाले एक वार्निश किये हुए रेशमके व्योमयानको उक्त गैससे परिपूर्ण करके हवामें छोड़ा—वह ३००० फुट ऊपरतक गया और प्रायः ४५ मिनिट तक वायुमंडलमें परिभ्रमण करके १५ मील दूरीपर जा गिरा ! कहते हैं, जिस जगह यह वायुयान गिरा—वहाँके किसानोंने इस अनदेखी घटनाको किसी शैतानके आगमनकी सूचना समझा और इस कारण उन्होंने उसे डरते डरते उठाया और फिर एक हलसे बाँध कर चारों ओर घुमाया। इस तरह जब तक वह फट-फटाकर चिन्दी चिन्दी न हो गया तब तक उन लोगोंने चैन नहीं लिया !

इस घटनाके कई महीने बाद योसफ माण्ट-गलाफियेने एक नवीन व्योमयान बनाकर और उसे उष्ण गैससे परिपूर्ण करके दर्शक-मंडलीके सामने उड़ाया । वह बहुत ऊँचाई तक गया और इस तरह उसने अपनी कृतकार्यताका अच्छा परिचय दिया ।

सन् १७८३ ई० में योसिओ पिलाट्रे दी रोजिये नामक एक व्यक्तिने पृथ्वीसे रस्सी आदिके द्वारा कोई सम्बन्ध न रखकर सबसे पहले एक मुक्त व्योमयान आकाशमें उड़ाया था । इस दुःसाहसिक विमानविहारीकी मृत्यु इससे दो वर्ष बाद ३००० फुटकी ऊँचाईसे विमान गिर पड़नेके कारण हो गई । उसने मरनेके पहले हैड्रोजन और उष्ण वायुकी सहायतासे एक नये ढँगका यान तैयार किया था । उस यानमें दो गोले एक हैड्रोजनसे और दूसरा उष्ण-वायुसे भर कर तर ऊपर लगाये गये थे । क्योंकि उसको विश्वास था कि हैड्रोजन गैस हलकी होनेके कारण स्वभावतः ऊपर उठनेकी चेष्टा करेगी और नीचेके गोलेको गरम करनेसे उसकी हवा फैलनेकी चेष्टा करेगी । फलतः यान ऊपर उठेगा और पीछे ज्यों ज्यों वह उष्ण वायु ठंडी होती जावेगी, त्यों त्यों वह भारी होकर नीचेकी ओर आने लगेगा । किन्तु ऐसे यंत्रमें जो विपत्ति थी, उसकी ओर उसका ध्यान नहीं पहुँचा । इस यानमें विपद यह थी कि वायुके साथ हैड्रोजन मिलते समय यदि अग्निसंयोग हो जाय तो वह आवाज करके एकदम फट जावेगा । आखिर यही हुआ । उसने इस यानको उड़ाया और वह आध घंटा आकाशमें भ्रमण करनेके बाद हैड्रोजनके फटनेसे नष्ट होकर जमीनपर गिर पड़ा और उसके साथ ही विमान-विहारीकी भी मृत्यु हो गई ।

व्योमयानको इच्छानुसार चलानेके लिए जिन लोगोंने अपनी अपार शक्ति व्यय की थी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन लोगोंमेंसे जनरल मयेसूनियका नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह आजसे प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पहले व्योमयानको स्वेच्छापूर्वक चलानेके लिए जिन सब उपायोंका उल्लेख कर गया है, वर्तमान समयके व्योमयान उन्हीं सब उपायोंके अवलम्बनसे बनाये जाते हैं। उसके मतसे बेलूनको लम्बी आकृतिका बनाकर उसके उपरिभागको आवरणसे ढँक देना चाहिए, फिर उसमें एक त्रिकोण पालको जोड़कर उसमें गरम वायुसे भरी हुई थैलियाँ बाँध देना चाहिए और बेलूनके पिछले भागमें स्टीमरके चाकके समान एक चाक लगाना चाहिए। मयेसूनियकी पद्धति पर बनाये हुए बेलूनका चाक मनुष्य द्वारा घुमाया जाता था।

सन् १७८४ ई० में पारी नगरके राबर्ट नामके दो भाइयोंने एक बेलून बनाया। उसका आकार खंभेके समान था, परन्तु उसके दोनों छोर अर्धगोल (Hemispherical) थे। उन्होंने इस बेलूनको डांडे (पतवार) की सहायतासे चलानेकी चेष्टा की थी। पहली साल तो उनकी मिहनत सफल न हुई, परन्तु दूसरी सालके उद्यमसे उनका बेलून आकाशमें गोलाकृतिमार्गसे घूमने लगा।

वैज्ञानिक जगतमें भाफ पैदा करनेवाले यंत्र (Steam boiler) और जल पहुँचानेवाले यंत्र (Injector) का आविष्कार करनेके कारण मि. गिफार्डका नाम सर्वत्र परिचित है। वे बहुत दिनोंसे एक हल्के और बहुत शक्तिवाले एंजिनको बनानेमें व्यस्त थे और उसके फलस्वरूप उन्होंने १ मन दस सेर भारी, और ५ घोड़ोंकी शक्तिवाला एक एंजिन तैयार किया था। उसने देखा कि ऐसे एंजिनकी सहायतासे व्योमयान स्वेच्छापूर्वक चलाया जा सकता है। अतएव उसने सन् १८५२ ई० में पारी नगरमें एक व्योमयान बनाया। यह व्योमयान जुलाहेके करघेके सिटलके आकारका था। इसकी लम्बाई १४४ फुट थी। इसके मध्यके फूले भागकी परिधि ४० फुट थी और भीतर ९००० घन फुट जगह थी। इसका ऊपरी भाग रस्सियोंके जालसे आच्छादित था और नीचेभागमें ६० फुट लम्बी एक लकड़ी कई रस्सियोंकी सहायतासे लटकती हुई ऊपरी जालके दोनों छोरोंसे जुड़ी थी। कई रस्सियोंकी सहायतासे इस लकड़ीमें एक नौका लटकाकर उसपर ३ घोड़ोंकी शक्तिवाला एक एंजिन रक्खा जाता था। यह एंजिन बिजलीके पंखेके समान तीन फलके एक पंखेको हर एक मिनिटमें ११० बार घुमाता था।

गिफार्डके आविष्कृत व्योमयानमें दो दोष थे—पहला, व्योमयानसे नौका जिसतरह लटकाई गई थी, उससे चलते समय व्योमयान कम्पित न होने पर भी एंजिनके काँपनेसे सारा व्योमयान कंपित हो उठता था; दूसरा, व्योमयानमें हैड्रोजन वा कोयलेकी गैस (Coal gas) के समान किसी गैसको भरकर उसके पास अग्नि रखनेसे जो अनर्थ हो सकता है, उसे सभी अनुमान कर सकते हैं। मि० गिफार्डने इन दोषोंको भी बहुत कुछ दूर कर दिया था। उनका यह व्योमयान प्रतिसेकंड ६ से ८ फुट तक चल सकता था।

तीन वर्षके बाद इस वायुयानमें और भी कइ सुधार हुए। आकाशमार्गमें चलते समय व्योमयानके प्रतिकूल चलनेवाली हवाके वेगको कम करनेके लिए इसके आकार और अनेक भागोंमें बहुत परिवर्तन किया गया। मि० गिफार्ड इस वायुयानमें बैठकर हवाकी गतिके विरुद्ध चलनेमें समर्थ तो हुए परन्तु उतरते समय पृथ्वीसे टकराकर वह सारा यान नष्टभ्रष्ट होगया। इसके बाद उन्होंने और भी कई व्योमयान बनाये; परन्तु उनमें और कोई विशेषता नहीं थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सन् १८७२ ई० में पाउल हेनलाइनने एक नई तर्जका विमान बनाया, इसकी आकृति एक विचित्र ढंगकी थी।

पहले करघेके सिटलके आकारके जिस व्योमयानका वर्णन लिखा है उसके दोनों सिरे सकरे थे परंतु यह केवल एक ही ओर सकरा था और उस जगहसे वह क्रमशः चौंड़ा होता गया था। इसके नीचे कोयलेकी गैस (Coal gas) से परिपूर्ण एक एंजिन लगाया जाता था। यह एँजिन गैसको जला कर चलाया जाता था। पूर्वोक्त व्योमयान गैस कम हो जानेपर आकृतिमें छोटा हो जाता था। इसी दोषको दूर करनेके लिए व्योमयानके एक मध्यस्थ गोलेको एक पंपकी सहायतासे सदैव वायुपूर्ण रखते थे। उक्त एँजिनके एक Trapezium के आकारके डानेको घुमानेसे सब यंत्र चलते थे। यह व्योमयान प्रति सेकंडमें प्रायः पाँच फुटके वेगसे चल सकता था। इसके निर्माता धनाभावके कारण और परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए।

सन् १८७२ ई० में फ्रान्स और प्रशियाके युद्धके समय फ्रान्सके अधिकारियोंने डूपय डि लोमको व्योममान निर्माण करनेके लिए नियुक्त किया था। उस समय तक जितने व्योमयान बने थे वे सब बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली मोटर या गैससे चलनेवाले एँजिनोंकी सहायतासे वायुमें विचरण करते थे; किन्तु डिलोमने उन उपायोंका अवलम्बन न करके मनुष्यशक्तिसे चलानेका उपाय निकाला था। उन्होंने अपने नवीन व्योमयानमें एक वायुपूर्ण गोलेका व्यवहार किया था। उस गोलेके साथ रस्सीकी सहायतासे एक पंखोंवाला यंत्र नीचे लटका रहता है। आठ आदमी ताकतके साथ उन पंखोंको घुमाते थे। इससे यंत्र प्रति सेकंड ४ फुटकी गतिसे चलता था और इच्छानुसार १० डिगरी तक दिशाओंको बदलकर उड़ाया जा सकता था।

फ्राँसमें डि लोमके बाद तीन चार और भी वायुयान बने, वे प्रायः बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली मोटरकी सहायतासे भ्रमण करते थे। इसके पश्चात् सेनापति रेनार्ड और क्रेवसने जिन व्योमयानोंका आविष्कार किया उन्होंने मानों स्वेच्छासे चलनेवाले व्योमयानोंका रास्ता खोल दिया। उन्होंने १८८४ ई० में जो व्योमयान बनाया था वह देखनेमें मछलीके आकारका और पहले बने हुए विमानोंसे बहुत बड़ा था। ९ घोड़ोंके ताकतकी एक बहुत हल्की बिजलीकी मोटर एक पंखेको प्रति मिनिटमें ५० बार घुमाती थी। यह पंखा सामनेकी ओर लगा रहता था। इस पंखेके चलनेसे समस्त यंत्र वायुमें सहज ही उड़ सकता था। बेलूनके नीचेके भागमें जो बैठनेकी जगह थी, वह रस्सीकी सहायतासे खूब मजबूतीके साथ उपर मत्स्याकृतियंत्रसे बँधी रहती थी। यदि बेलूनके वजनका केन्द्र किसी तरफ हट जावे, तो उसको ठीक करनेके लिए एक झूला लगा रहता था। उसे एक बाजूसे दूसरी बाजूतक ले जाकर यंत्रके वजनको समतोलकर देते थे और इसके द्वारा यंत्रका हिलना डुलना या किसी एक ओरका झुकना बंद हो जाता था। इस बेलूनका नाम 'ला-फ्रांस' रक्खा गया था। पहले इसके निर्माता लोग किसी निर्दिष्ट स्थानसे उक्त यानपर बैठकर पेरिस नगरके ऊपरसे अनेक चक्कर देकर वापिस लौट जाते थे। किसी स्थानपर यात्राकरके फिर उसे अपनी शक्तिसे उसी स्थानपर लेजाना-इसका आविष्कार सबसे पहले इसी यानके निर्माताओंने किया था। यह विमान प्रति सेकंड २१ फुटके हिसाबसे-हिले डुले या कंपित हुए बिना चल सकता था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मि० वेनहोमने बहुत दिनोंतक पक्षियोंके उड़नेकी प्रणालीका अनुसंधान करके सन् १८६६ में यह निश्चय किया कि जब कोई समतल चीज वायुमण्डलमेंसे होकर जाती है तब वायु उसके ऊपरकी ओर जो दबाव डालता है वह उक्त सब स्थानोंमें एकसा प्रयुक्त नहीं होता; केवल सामनेके कुछ ही अंशोंमें प्रयुक्त हुआ करता है। इस लिए विमानके सामनेके भागको विस्तृत न बनाके उसे लम्बाई देकर बनाना उचित है। उन्होंने इस बातपर भी लक्ष्य किया कि एक बड़ा पक्षी अपने दोनों पंखोंको एक ही साथ हिलाकर शान्त भावसे सहज ही चला जा सकता है। इससे उन्होंने यह सिद्धांत निकाला कि पक्षीके उक्त अवस्थामें उड़ते समय वायुकी अत्यन्त पतली तह अपने स्थानसे हट जाती है; अतएव वायुमण्डलमें चलनेके समय यदि किसी भारी पदार्थको ले जाना हो तो पूर्वोक्त सामनेके भागके समतलोंकी संख्या बढ़ानी होगी और उन सबको समान्तराल भावसे, बीचमें थोड़ेसे लम्बाईके भागको छोड़कर, एकके ऊपर एक स्थापित करना होगा।

मालूम पड़ता है कि इसी आधार पर ट्राईप्लेन आदिकी सृष्टि हुई है। मि० वेनहोमने गंभीर पर्यवेक्षण करके उपरिलिखित जिन सत्य बातोंका आविष्कार किया था उनसे वैमानिकोंको बहुत लाभ पहुँचा और इसी कारण, मि० वेनहोमकी कीर्ति संसारमें अचल रहेगी।

मि० वेनहोमके आविष्कृत तत्त्वोंकी परीक्षा करके फिलिप्सने एक यंत्र निर्माण किया। परीक्षा द्वारा देखा गया कि वह यंत्र जमीनसे सहज ही आकाशमें उड़ सकता है किन्तु उड़ते समय साम्यावस्थामें नहीं रह सकता था। ऐसे बेलूनको Captive Baloon या 'बन्दी-बेलून' कहते हैं। क्योंकि उसे एक स्थान पर रस्सीसे बाँधकर चारों ओर घूमकर देखभाल करनेके काममें ला सकते हैं—आने जानेके काममें नहीं। इसके बाद ही अमेरिका, जर्मनी, इंग्लेंड, फ्राँस आदि देशोंमें बेलूनकी उन्नतिके लिए खूब ही प्रयत्न होने लगे। अमेरिका और जर्मनीने इस काममें सबसे पीछे हाथ डाला था।

अमेरिकाके प्रसिद्ध पदार्थविज्ञानविद् मि० एस. पी. लेङ्गलिने गहरी गवेषणा करके व्योम-मानोंकी खूब उन्नति की थी, इसी समयसे परीक्षक लोग पक्षीके आकारके छोटे छोटे और फिर बड़े बड़े यान प्रस्तुत करके पर्वत या किसी ऊँचे स्थानोंपरसे बैठकर नीचे जमीनमें आनेकी चेष्टा करने लगे।

इस काममें सबसे पहले अटो लिलियेन्थाल नामक एक जर्मन इंजीनियरने प्रयत्न किया। उसकी परीक्षा-प्रणाली अभीतक संसारभरमें प्रसिद्ध है। उसने पक्षियोंके परोंके समान दो पर अपनी पीठपर लगाकर देखा कि वह ४५ फुट ऊँची जगहसे उड़ कर प्रायः ४५० फुट दूरीतक अपनी इच्छानुसार हाथ पैर हिलाकर और दिशा बदल कर उड़ सकता है। फिर उसने मोटरकी सहायतासे परीक्षा करनेके लिए प्रत्येक बाजू पर दो समतल पीठवाले वायुयानोंको निर्माण किया।

उसकी इस प्रणालीको ग्रहण करके अमेरिकामें हेरिंग, इंग्लेंडमें पिल्सार और फ्राँसमें फारवार नामक व्यक्तियोंने वायुयानोंकी खूब उन्नति और सुधारणा की।

पिल्सारकी इस गवेषणाके बाद इंग्लेंडमें और कोई मौलिक गवेषणा नहीं हुई। केवल कोडि और ए. वी. रो इन दोनों विमान-विहारियोंने एक ट्राईप्लेनका उपयोग किया था।

राईट नामके दो भाइयोंने लिलियेन्थालकी गवेषणा (खोज) प्रणालीका अध्ययन करके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक उच्चश्रेणीका वाईप्लेन तैयार किया था। सन् १८९४ ई० में फारवार नामक एक फरासीसी सेनापतिने भी लिलियेन्थाल की प्रणालीके अनुसार व्योमयान बनाया था।

सन् १९०६ ई० में सेब्टच्-डूमण्ट नामक एक गगनविहारी परीक्षा-भूमिमें अवतीर्ण हुआ। उसे ८३ फुट लम्बे स्थानका भ्रमण करनेके उपलक्षमें आर्कडेकन-पुरस्कार मिला। कहा जाता है कि एडके सिवा सबसे पहले पूरी पूरी सफलताके साथ इसीने आकाशभ्रमण किया था। एक महीनेके बाद वह प्रायः ७४० फुट दूरीतक भ्रमण करने लगा था। इसके बाद सन् १९०८ में हेनरी फारमेनको ३३०० फुट परिधिकी एक त्रिकोणाकृति भूमि परिभ्रमण करनेके उपलक्ष्यमें ३ लाख रुपयेका आर्कडेकन पुरस्कार मिला।

इसी समय व्योमविहारके लिए फ्राँसमें बहुतसे यंत्र बनें, जिनमेंसे अनेक यंत्र परीक्षाके समय नष्ट हो गये और इस काममें बहुतेरे मनुष्योंके प्राण भी गये। सन् १९०८में अमेरिकाके विलवर राइटने व्योमयानकी सहायतासे अनेक आश्चर्यजनक काम दिखाकर कुछ समयके लिए सब लोगोंकी दृष्टि अमेरिकाकी ओर खींच ली। किन्तु इसके बाद जब मि. फारमनने सेलनस्से रिम्स नगर तक २१ मीलकी उड़ान भरी, तब सबकी दृष्टि यूरोपकी ओर आकर्षित हुई। इसके बाद लुईस ब्लेरियट १९ मीलका भ्रमण करके अपने स्थान पर लौट आया। सन् १९०९ के जुलाई महीनेमें मि. लेथामने इंग्लिशचेनलको लाँघनेकी चेष्टा की थी, परन्तु पहली वार विफलमनोरथ होनेपर उन्होंने अपने व्योमयानको ब्लेरिमट नामक व्यक्तिको बेच डाला। २५ वीं जुलाईको सबसे पहले मि० ब्लेरियटने इंग्लिशचेनलको लाँघा। इसके पश्चात् कोम डि लामवार्टने पारीनगरके ऊपर एक स्तम्भके चारों ओर १००० फुट ऊँचाई पर भ्रमण किया और १९०९ की ३१ वीं दिसम्बरको मरिस फारमेनने ४० मिनटमें ४७ मीलकी यात्रा तय की।

इसके पश्चात् पहले कही हुई रीतिके अनुसार कई लोगोंने आकाशभ्रमण किया और इसके बाद व्योमयानके द्वारा लम्बी लम्बी यात्रायें करना भी सहज हो गया। आकाशमें जो लोग बहुत ऊँचे तक उड़े हैं, उन सबमें लेथम और केवेजरका नाम ही सबसे प्रथम उल्लेखनीय है। इनके बाद भी लेगान्न १०७४६ फुट ऊँचाइ तक जानेमें समर्थ हुए थे।

लिलियेन्थालके समयसे ही जर्मनीमें सबसे पहले बेलून-रचनाका काम प्रारंभ हुआ था। इसके पश्चात् ही जर्मनीमें वायुयान-निर्माणका काम बड़ी तेजीके साथ चलने लगा। बहुत संभव है कि जर्मनीने अपने पक्षके देशोंमें गुप्तरीतिसे युद्धविभागके व्यवहारके लिए व्योमयानोंके बनानेका उत्साह दिया हो। उसने अगणित अर्थव्यय और भगीरथ प्रयत्नके बलसे बहुत थोड़े समयमें ही वायुयानोंको इतनी उन्नत अवस्थामें करके संसारको चकित कर दिया है। १९ वीं शताब्दीके शेष भागसे जर्मनीमें व्योमयानोंकी उन्नतिके लिए बड़े बड़े आयोजन हुए, बड़ी बड़ी परीक्षा हुईं। इसी समय इस आन्दोलनके क्षेत्रमें काउंट जेपेलिन उतरे और उन्होंने व्योमविहारके लिए एक अद्भुतयंत्र निर्माण करके सबको विस्मित कर दिया। उन्होंने अपने नामके अनुसार इस यंत्रका नाम भी 'जेपेलियन' रक्खा। इनकी जीवन-कहानी बड़ी आश्चर्यमय है। आत्मविश्वासके बलपर मनुष्य किस तरह अनेक बाधा-विघ्नोंको हटाकर निर्भय मनसे अपने कार्य-साधनमें अग्रसर हो सकता है-उनके जीवनसे इसकी अच्छी शिक्षा मिलती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काँउट जेपेलिनका जन्म सन् १८२४ ई० में कनष्टेन्स ह्रदके एक गिरजाघरमें हुआ था। युवावस्थामें किसी व्यापारकी लालसासे आप अमेरिका गये थे, और २५ वर्षतक वहीं रहकर आपने अमेरिकाके प्रसिद्ध घरूयुद्धमें योग दिया था। इसी समय आपको जीवनमें सबसे पहले व्योमयानपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और इसीके फलसे आप व्योमयानविद्यामें साधारण जानकारी प्राप्त करके भविष्य जीवनके जगतव्यापी यशको अर्जन करनेमें समर्थ हुए। अमेरिकाका युद्ध बंद होते ही आप जर्मनी लौट आये और इसके बाद आस्ट्रियो और प्रशिया तथा आस्ट्रिया और फ्रांसमें जो युद्ध हुए उन दोनों युद्धोंमें आपने उपस्थित रहकर अपना वीरत्व दिखाया।

यद्यपि युद्धकार्यमें आप बहुत दक्ष और योग्य सैनिक थे; परन्तु आपका मन युद्धव्यवसायकी अपेक्षा आविष्कारोंकी ओर अधिक आकर्षित रहता था। फलतः २५ वर्ष सेनाविभागमें काम करनेके पश्चात् व्योमयानके विषयमें अनुशीलन करनेके हेतु आप जनरलके पदको परित्याग करके इस काममें लग गये। इस लिए ५० वर्षसे अधिक उमरमें आपको विद्युत्-विज्ञान, शक्तिविज्ञान (mechanics) और वायुविज्ञान (meteorology) का भलीभाँति अनुशीलन करना पड़ा।

इसके पश्चात् आपको व्योययान रखने और नाना तरहकी व्ययसाध्य परीक्षाओंके करनेके लिए एक पृथक् भवन बनानेकी आवश्यकता हुई और तदनुसार आपने इस कामके लिए कानष्ट्रेंट ह्रदके समीपवर्त्ती फ्रिड्रिक साफेन नामक स्थान पर व्योमयोनोंके गिरनेका भय निवारण करनेके लिए एक ऐसा जहाजीपुल बनाया जो इच्छानुसार चारों ओर घुमाया जा सकता था। परीक्षाके समय वायुप्रवाह व्योंमयान पर गिर कर अनिष्ट पैदा कर सकता था, इसी आशंकाको दूर करनेके लिए उस जहाजी पुलको इच्छानुसार घुमाकर वायुप्रवाहके सन्मुख कर लेते थे।

परीक्षा आरंभ करनेके पहले काउंटके पास ३७५०००) की सम्पत्ति थी, परन्तु यह सम्पत्ति थोड़े ही दिनोंमें पूरी हो गई। तब आपने उक्त विषयमें और भी अनुशीलन करनेके लिए अपने भाई–बंधुओं, समस्त स्वदेशहितैषी लोगों और सबके पीछे सम्राट्से सहायताकी प्रार्थना की। अंतमें १९०८ में उनका भाग्य प्रसन्न हुआ। जर्मन-गवर्नमेण्ट बहुत दिनोंसे काउंटकी शीघ्रतासे उन्नति करनेवाली कार्यप्रणालीको देखती आती थी। अतः जर्मन सम्राट् कैसरकी अनुकूलतासे जर्मनीके समस्त शहरों और नगरोंमें जेपेलिन-अर्थभाण्डार स्थापित कर दिये गये और उनके द्वारा पहले ही महीनेमें प्रायः ४५ लाख रुपया भंडारमें जमा हो गये !

इस सहायताको पाकर काउंट अपनी कार्यप्रणालीको और अधिक परिमाणमें विस्तृत करनेमें समर्थ हुए और उन्होंने थोड़े समयके भीतर ही हजारों वायुयान बना डाले। शुरू शुरूमें परीक्षाके समय बहुतेरे यान तेज हवा और ऐसे ही कई कारणोंसे नष्ट हो गये।

काउंट शुरू शुरूमें जब इस तरह अपने कार्यसाधनमें लगे थे उससमय अनेक प्रतिद्वन्द्वी गवर्नमेण्टोंने उन्हें बहुत लोभ-लालच दिया था। परंतु लालचमें पड़ कर उन्होंने देशके साथ विश्वासघात नहीं किया। और इस लिए कि उनके आविष्कार किसी तरह विदेशियोंको प्रगट न हो जायँ, उन्होंने खूब सावधानी रक्खी। आज्ञाके अतिरिक्त कोई आदमी उनके कारखानेके पास नहीं जा सकता था। कारीगरों और व्योमसंचालकोंसे व्योमयान और उसके आवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्कारके संबंधकी कोई बात प्रगट न करनेके लिए प्रतिज्ञा कराई गई थी। परन्तु इतनी सावधानी रखने पर भी सौभाग्यवश फरासीसियोंको इनकी प्रणालीका पता लग गया। १९१२ ई० में एक जेपेलियनको लाचार होकर फ्रांसके लूम्याँ नामक स्थानमें उतरना पड़ा और उस समय वहाँके व्योमयान-विद्याके जाननेवाले लोगोंने उसे रोक कर २४ घंटे तक उसके प्रत्येक अंग प्रत्यंग और कल पुरजेकी बारीकीसे जाँच कर डाली। तथापि इस समय जर्मनी ही आकाशयानोंकी उन्नतिमें सबसे आगे है। एक नये किस्मके बलिष्ट ट्राइप्लेनके बननेका सम्वाद अभी हाल ही जर्मनीसे आया है *।

पराधीन तोतेके प्रति।

(कवि, श्रीयुत पं० **गिरिधर शर्मा**।)

(मुमुक्षु भारतीय बन्धुओंको सादर समर्पित।

(१)

विविध सुन्दर रत्न जड़ा हुआ,
कनकका शुक! है यह पींजरा।
मलिनता मनकी कर दूर क्या-
हृदयमें भरता तव मोद है।

(२)

यह मनोहर कांचन-यष्टिका;-
जड़ रहीं मणियाँ जिसमें भलीं।
चरण तू रखके इस पै सदा,
न कितना मनमें खुश हो रहा।

(३)

कुछ मनोहर गर्दन मोड़ तू,
सुभग! देख रहा शुभ दृष्टिसे।
नच रहा कुछ बोल रहा गिरा,
छबि रहा दिखला कुछ पाँखकी।

(४)

प्रिय मनोहर पाँख हरी हरी,
अरुण है अति उत्तम चोंच भी।
शुक! मनोहर श्याम लकीर है,
कुछ ललास लिये तव कंठमें।

(५)

इधर भोजनको फल हैं नये,
उधर है जल निर्मल पानको।
शुक! तुझे यह आसन है मिला,
महलमें इस नौ-लख बागके।

(६)

कर रहे मलको कुछ दूर हैं,
कुछ खगेश! तुझे नहला रहे।
न कितने प्रिय सेवक-सेविका,
लग रहे जन यों तव दास्यमें।

(७)

विभव जो मिलते सबको नहीं,
सुलभ हैं सब वे तुझको यहाँ,
महिप भी जिसको कर दें, वही—
मुख नृपेश्वर देखरहा तव।

(८)

अति कृतज्ञ विहङ्गम तू सही,
कि नयनोज्वल पाकर नाथका।
मृदु गिरा पहले पढ़ ली वही,
कह रहा प्रभुको मुद दे रहा।

(९)

शुक! बड़ी कितनी यह बात है,
कि इस पंजरमें रहते हुए-।
भय नहीं तुझको कुछ बाज़का,
न चिर शत्रु विशाल बिड़ालका।

---

* बंगला प्रवासीके लेखका अनुवाद।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१०)

भटकते फिरना वनमें कहाँ ?
सुख कहाँ यह जो मिलता यहाँ ?
सुकृतसे तुझको यह है मिला,
न जगमें तुझसा पर धन्य है।

(११)

जगतमें बरसे जल या नहीं,
रुचिर शस्य फले अथवा नहीं।
पर अनुग्रहसे तव नाथके,
सुख नहीं कम हो अणु मात्र भी।

(१२)

विपिनमें दुसरे खगवृन्द ये,
कर रहे तन तोड़ परिश्रम।
तदपि है मिलता इनको नहीं,
नियत, वक्त हुए पर भोजन।

(१३)

नियत काल हुए, हर रोज ये
शुक ! तुझे मिलते फल मिष्ट हैं।
चख रहा इनको धर चंचुमें;
तज रहा कुछ झूठनमें यहाँ।

(१४)

शकुनि ! 'पेट भरे' इसके लिए-
श्रम हजार करें जग जीव ये
बिन परिश्रम ही तुझको यहाँ,
अयि कृतार्थ ! मिला सब भोज्य है।

(१५)

न तुझको श्रम हो जगमें कहीं,
न उड़ना, चलना, फिरना पड़े।
इस लिए प्रभु है तव काटता,
युगलपंख दयालुशिरोमणि।

(१६)

चरणमें प्रभुने तव डाल दी,
कनककी अति सुन्दर पैजनी।
जब कभी उठता पद है तव,
रणन है करती अति सुन्दर।

(१७)

विभव सुन्दर पाकर ये यहाँ,
विहगराज ! रहो सुख भोगते।
मम कुतूहलके वश हो मन,
वचन यों तुमको कहला रहा।

(१८)

पर विचार करें यदि सूक्ष्म तो,
स्थिति यही तव तप्त करे हमें।
न कुछ भी अफसोस ! स्वतंत्र तू,
न इसका कुछ बोध रहा तुझे !

(१९)

कनकके जिस पंजरमें यहाँ,
शकुनराज ! सखे ! तुम बंद हो।
कर नहीं सकता वह साम्य है,
विपिनके तरु-कोटरकी कभी।

(२०)

रख पदद्वय कांचन-यष्टिपे,
हँस रहा शुक ! क्या खगवृन्दको।
मृदुल पल्लव शोभित-बेलकी
यह कहीं सम हो सकती नहीं।

(२१)

जरठता जब हे शुक ! आयगी,
मधुर-भाषण-शक्ति नसायगी।
तब विपत्ति नितान्त सतायगी,
कि जिसकी सुध भी दुख दे रही।

(२२)

अब बिलोक रहे अति प्रेमसे,
सुन रहे तव हैं वचनावली।
फिर यही सबके सब मानव,
शकुनि ! दानवसे बन जाँयगे।

(२३)

तव समीप कभी नहीं आयँगे,
वचन यों अति तीक्ष्ण सुनायँगे !
" न इसको कुछ बोध, न कामका,
जरठ पिंजड़ है यह चामका ! "

१ हे पक्षिराज। २ बुढ़ापा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२४)

विविध नीति कला पढ़ते हुए,
शुक ! कभी यह भी प्रभुसे पढ़ा,।
" सुखमयी सब भाँति स्वतंत्रता,
सकल दुःखभरी परतंत्रता।"

(२५)

निपुणतायुत हो कुछ सोच तो,
शकुन ! है सुख भी कितना तुझे।
यदि यही सुख है परतंत्रता,
जगतमें फिर है कह दुःख क्या ?

(२६)

विभव है कुछ ही दिनके लिए,
स्थिर नहीं रहती शुक ! ये कभी।
कमलिनी-दलके जल-बिन्दु क्या-
पवनके चलते स्थिर हैं रहे ?

(२७)

निकल जाय नहीं करसे कहीं,
हृदयमें दुख पाकर तू कभी।
यह विचार सदा धर चित्तमें,
कतरता प्रभु है तव पक्षको !

(२८)

यह मनोरम सुन्दर भोजन,
शुक ! तभीतक है मिलता तुझे,
सुमधुर-स्वरसे जबलों गिरा,
श्रवणमें प्रभुके तव आरही।

(२९)

हृदय-वल्लभ, जीवनप्राण तू,
विहग ! तू जिसका सिरमौर है।
कुछ विचार वही सुपतिव्रता,
तव शुकी कितना दुख पारही।

(३०)

अति विषाद भरी जननी तव,
सतत दुर्बल है शुक ! होरही।
धर महा अभिमान परात्रका,
स्मरण भी करता उसको न तू।

(३१)

सुमतिकी मतिके प्रतिकूल जो,
हृदयको लगता अतिशूल जो,
जब यही सुख है, तब, दुःखका-
बस अभाव शुकोत्तम ! हो लिया।

(३२)

शुक ! सुवर्ण-सुशोभित पींजरा,
मत विचार इसे प्रिय तू कभी।
समझ तू इसको मुख व्यालका,
सकल-वस्तु-विनाशक कालका।

(३३)

जनक पूज्य कहाँ ? जननी कहाँ ?
सुहृदवृन्द कहाँ ? गृह है कहाँ ?
कि जिनसे तव जन्म हुआ, तथा-
सुख मिला तुझको अति बाल्यमें।

(३४)

स्वजन आदि जिसे मिल भोगते,
विभव हैं कहते उसको सुधी।
रह जुदा सबसे शुक भोगता,
विभव नाम कहीं इसका नहीं।

(३५)

अब विचार किये फल क्या ? नहीं।
स्ववश तू, सब भाँति बँधा हुआ।
न सहता विधि भी परतंत्रकी,
इसप्रकार विचार-परम्परा।

(३६)

स्वजनसे तुझको जिस क्रूरने,
कर जुदा शुक ! बंद किया यहाँ।
अशन तू उसके करका दिया,
कर रहा हह भूल सभी कथा।

(३७)

कुपित होकर, या, कर भूल जो,
न तुझको जल भोजन दे प्रभु।
मर रहे शुक ! तो पिंजरे पड़ा,
खबर भी तब हो जगको नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३८)

स्वजनका तुझसे न भला हुआ,
कर सका कुछ काम न जातिका ।
अहह ! पेट भरा पड़ पींजरे,
स्व-पुरुषार्थ विनष्ट किया सभी !!

(३९)

मिल नहीं सकता निज जातिसे,
नहिं मिटा सकता मनकी व्यथा ।
परम सुन्दर कुंजनिकुंजमें-
न दिखला सकता, अपनी छटा ।

(४०)

अति मनोज्ञ छटा वन-कुंजकी,
स्वजन-मित्र-सुहृज्जनमें स्थिति ।
वह विचार, सुकर्म, स्वतंत्रता,
सब हुए सपना तव हेतु हैं ।

(४१)

सुन गिरा मम क्या इस चंचुसे,
लग गया शुक ! पंजर तोड़ने ।
विफल ही यह यत्न नहीं सखे !
विहग ! चंचु-विघातक भी बड़ा ।

(४२)

शुक ! न रो, धर धीर, सुचित्त हो,
न कर शोक, लगा मन योगमें ।
कर भला जगका, भज 'कृष्ण' को,
रह सदा परमारथमें रँगा ।

(४३)

समय पाकर यों भगवानकी,
विहग ! तू प्रियता अति पायगा,
सकल बंधनसे छुट जायगा,
सब कहीं सुख चैन उड़ायगा ।

विविध प्रसङ्ग ।

१ जाली जैन-ग्रन्थ ।

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें बीसों ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं, जिन्हें जाली कह सकते हैं; जो उस सम्प्रदायके किसी प्रसिद्ध पुरुषके नामसे प्रसिद्ध किये गये हैं और इस कारण सर्वसाधारण लोग उन्हें मानने लगे हैं । उदाहरणके लिए हिन्दुओंके 'भविष्यत्पुराण' का उल्लेख किया जा सकता है । यह व्यासजीका बनाया हुआ कह लाता है; परन्तु इसमें अभी अँगरेजी राज्यतकका वर्णन लिखा हुआ है ! यदि कोई शंका करे कि व्यासजीकी रचनामें अँगरेजी राज्यके लार्डोंका वर्णन कहाँसे आया ? तो पौराणिक लोग उत्तर देते हैं कि व्यासजी सर्वदर्शी थे-उनके ज्ञानमें ये सब घटनायें पहले ही झलक गई थीं ! पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि जैनधर्ममें-दिगम्बरजैनसम्प्रदायमें-भी ऐसे कई ग्रन्थ हैं जिन्हें जाली कह सकते हैं और जो प्राचीन आचार्योंके नामसे उनके बहुत पीछे गढ़े गये हैं । ऐसे एक दो ग्रन्थोंकी चर्चा जैनहितैषीमें हो चुकी है । अब ऐसे एक और भी ग्रन्थका पता लगा है जिसका नाम '**भद्रबाहुसंहिता**' है । यह अन्तिम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीका-आजसे लगभग २२०० वर्ष पहलेका-रचा हुआ समझा जाता है ! बहुतसे श्रद्धालु सज्जन इसे बड़े ही महत्त्वकी चीज समझते हैं; परन्तु श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके पत्रसे मालूम हुआ कि यह ग्रन्थ विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिके बादका बना हुआ है ! वे बहुत ही जल्दी इसकी एक विस्तृत समालोचना प्रकाशित करेंगे और उसमें बतलायँगे कि उक्त ग्रन्थ जाली क्यों है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगभग किस समयमें इसकी रचना हुई होगी। इसमें भी बहुतसी बातें भविष्यत्कथनके रूपमें लिखी गई हैं और यह प्रकट करनेकी कोशिश की गई है कि ग्रन्थकर्त्ता सचमुच ही भद्रबाहु श्रुतकेवली हैं! आशा है कि अन्यान्य विद्वान् भी इस ग्रन्थकी परीक्षा करेंगे और उसका फल सर्वसाधारणपर प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे।

२ प्रान्तिक-सभाका अधिवेशन।

दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक सभा बम्बईका चौदहवाँ अधिवेशन इस वर्ष नासिकके निकट गजपंथ तीर्थ पर ता० ८ और ९ अप्रैलको सकुशल हो गया। गजपन्थ तीर्थपर सभाका यह दूसरा अधिवेशन है—इसके ७—८ वर्ष पहले वहाँ एक अधिवेशन और भी हो चुका है। अबकी बार जनसंख्या पहलेसे भी कम रही। लगभग ५००—६०० स्त्री पुरुष एकत्र हुए थे। पहले दिन तो मेम्बरोंका कोरम ही पूरा न हो पाया था, इस कारण सभाका अधिवेशन न हो सका। ये ऐसी बातें हैं जिनसे लोगोंकी रुचिका पता लगता है। सभाओं और व्याख्यानोंसे अब लोगोंको उतना प्रेम नहीं रहा है जितना कुछ समय पहले दिखलाई देता था। अब ये रोज रोजके काम हो गये हैं और इस कारण इनकी 'अतिपरिचयादवज्ञा' होने लगी है। जब तक इन कामोंमें कोई नई जान न डाल दी जाय और इनके मार्गोंमें कोई उत्साहवर्धन परिवर्तन न किया जाय तब तक यह शिथिलता बढ़ती ही जायगी। अधिवेशनकी सबसे बड़ी सफलता यह समझना चाहिए कि जुदी जुदी संस्थाओंको लगभग ढाई हजार रुपयोंकी प्राप्ति हो गई। सब मिलाकर १२ प्रस्ताव पास हुए जिनमें दो उल्लेख योग्य हैं। एक पं० अर्जुनलालजीके सम्बन्धका और दूसरा जैनहितैषी और जैनतत्त्वप्रकाशकके सम्बन्धका। हिन्दू विश्वविद्यालयके पाठ्य-ग्रन्थोंमें जैनग्रन्थोंको स्थान देनेके विषयमें प्रेरणा करने और जैनमित्रको आगामी वर्षसे साप्ताहिक कर देनेके प्रस्ताव भी उल्लेख योग्य हैं।

३ सेठीजीका प्रस्ताव।

सेठीजीके विषयमें जैनसमाजमें जो आन्दोलन हुआ है जान पड़ता है उसका परिणाम अच्छा हुआ है। उसने लोकमतको उनके अनुकूल बना दिया है और वह इतना प्रभाव डाल चुका है कि जो लोग पहले विरुद्ध थे वे भी अनुकूल हो गये हैं। यही कारण है जो प्रान्तिक सभामें यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास होगया कि उनके छुटकारेकी प्रार्थना करनेके लिए वायसराय साहबके पास एक डेप्यूटेशन भेजा जाय। श्रीयुक्त सेठ हीराचन्द अमीचन्दजी शोलापुर और श्रीयुत जयकुमार देवीदास चवरे बी. ए. बी. एल. ने डेप्यूटेशनमें जाना स्वीकार किया। श्रीयुत बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. डेप्यूटेशनमें जाना पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। इस विषयमें सभाकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। जिस प्रस्तावके लिए उच्चशिक्षा प्राप्त लोगोंके भारतजैनमहामण्डलका साहस न पड़ा, उसीको साधारण पढ़े लिखे लोगोंकी सभाने विना विरोध पास कर डाला! यद्यपि इस प्रस्तावके अनुकूल बहुमत तो महामण्डलकी सब्जैक्ट कमेटीमें भी था; परन्तु वहाँ प्रस्ताव पास न हो सका था। यहाँ हो गया, इसका सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ता है कि यहाँ न तो सभापति ही सरकारी नौकर थे और न दूसरे कार्यकर्त्ता। भारतके एक प्रसिद्ध नेताका मत है कि उच्चशिक्षाप्राप्त लोगोंके हृदय जितने कमजोर और भयभीत हैं, उतने साधारणजनताके नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इस मतकी सत्यता मण्डल और प्रान्तिक-सभाके कार्योंसे बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है।

४ जैनहितैषीके आन्दोलनका निषेध।

दूसरा महत्त्वका प्रस्ताव इन शब्दोंमें पास हुआ है—"जैनतत्त्वप्रकाशक और जैनहितैषीमें जो विधवाविवाहके मण्डनका आन्दोलन शुरू हुआ है—यह कार्य जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है। अतएव यह सभा इस दुष्कृत्यका निषेध करती है और पत्रसम्पादकों तथा विद्वानोंको प्रेरणा करती है कि वे इसके विरुद्ध लेख प्रकाशित करें।" इस प्रस्तावके अनुमोदनके लिए न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजी, पं० पीताम्बरदासजी और पं० कस्तूरचन्दजीके लगभग १॥ घंटे तक व्याख्यान हुए और जिसके मनमें जो आया उसने वही कहा। पिछले उपदेशक महाशयने तो जोशमें आकर यहाँतक कह डाला कि जो लोग जैनहितैषी खरीदते हैं वे अपने पैसेको पानीमें फेंकते हैं। सब भाइयोंको इसी समय प्रतिज्ञा कर लेना चाहिए कि जैनहितैषीको न कभी मँगायँगे और न कभी पढ़ेंगे। कई सज्जनोंने कहा था कि इस प्रस्तावकी जरूरत नहीं है, अनेक लोग इसके विरुद्ध भी थे, परन्तु अन्तमें प्रस्ताव रक्खा गया और जनरल सभामें पास भी हो गया।

हमें इस प्रस्तावके पास हो जानेमें जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ। जहाँ स्वतंत्र विचारकोंकी—अपनी सदसद्विवेक बुद्धिपर विश्वास रखने वालोंकी—संख्या थोड़ी होती है; दूसरोंके पीछे चलनेवाले—हाँमें हाँ मिलानेवाले अथवा दूसरोंके प्रभावसे दब जानेवाले ही अधिक होते हैं, वहाँ ऐसा होना ही चाहिए और फिर यह तो एक ऐसा विषय है कि जिसका नाम सुनते ही लोग भड़क उठ हैं—उसपर विचार करनेका उनकी गतानुगतिक बुद्धिको अवकाश ही नहीं मिलता है। और इसी कारण हम इसके पास होनेको कुछ महत्त्व भी नहीं देते हैं। यह तो पास होना ही चाहिए था। यदि यह पास न होता तो आश्चर्य होता। इस प्रस्तावको पेश करनेवालों, अनुमोदन करनेवालों और सम्मति देनेवालोंमेंसे किसीने भी इस बातकी जरूरत नहीं समझी कि जैनहितैषीके प्रथम अंकका वह लेख—जिसके कारण यह उछल कूद शुरू हुई है—एक बार अच्छी तरह बाँच तो लिया जाय। हमें बहुत अधिक सन्देह है कि उक्त लेख बाँचा गया है अथवा उसका अभिप्राय समझनेकी चेष्टा की गई है।

५ जैनहितैषीके लेखका सारांश।

जैनहितैषीके उक्त लेखका सारांश यह है कि स्त्री और पुरुष दोनोंको जन्मभर ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए। यह **श्रेष्ठ** मार्ग है। जो ऐसा नहीं कर सकते उन्हें शादी कर लेना चाहिए और पुरुषको अपनी एक मात्र स्त्रीमें और स्त्रीको एक मात्र अपने पुरुषमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। यदि बीचमें पुरुष मर जाय तो स्त्रीको और स्त्री मर जाय तो पुरुषको जीवन भर ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिए। यह **मध्यम** मार्ग है। जिन लोगोंसे यह नहीं बन सकता है—जिन्हें ब्रह्मचर्यसे जीवन बिताना कठिन जान पड़ता है उनके लिए तीसरा **निकृष्ट** मार्ग यह है कि स्त्रीके मरनेपर पुरुष दूसरी शादी करले और पुरुषके मरनेपर स्त्री अपने लिए कोई आश्रय ढूँढ़ ले। उक्त सारे लेखका यही आशय था और जिनके जरा भी विचार शक्ति शेष है, जो धर्म और समाजशास्त्रके स्वरूपको जानते हैं, वे इसमें कोई भी दोष या अन्याय नहीं देख सकते। लेख भरमें यह कहीं नहीं कहा गया है कि ए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवाह करना कोई पुण्यका कार्य है, अतएव उसे करना ही चाहिए। यह अवश्य कहा गया है कि जिन बालविधवाओंसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता है, जो अपने विचारोंपर विजय नहीं पा सकती हैं, और इस कारण गुप्त पाप करनेके लिए लाचार होती हैं, उनको बलपूर्वक एकाकिनी रहनेके लिए मजबूर करनेकी अपेक्षा यह अच्छा है कि उन्हें दूसरा पति करनेकी आज्ञा दे दी जाय। जो स्त्री पापोंसे डरती है और इस कारण एक बड़े भारी पापकी परम्पराको छोड़ देती है; परन्तु सर्वथा निष्पाप ब्रह्मचारिणी होकर रहनेमें लाचार है, इस कारण एक छोटासा पाप कर लेती है, अर्थात् निरन्तर छुपकर पाप करना छोड़कर किसी एककी हो जाती है; निःशङ्क होकर कहा जा सकता है कि वह अच्छा काम करती है। बड़े बड़े कुलीन सेठ साहूकारोंके घरकी उन विधवाओंसे जो जीवन भर पापके घड़े फोड़ा करती हैं, उन साधारण घरोंकी विधवायें अच्छी हैं जो अपनी प्रवृत्तियोंको दमन न कर सकनेके कारण पुनर्विवाह कर लेती हैं और दस्सा या विनैकया बनकर जीवन व्यतीत करती हैं।

६ जैनधर्म और पुनर्विवाह।

प्रस्तावके शब्दोंमें कहा गया है कि 'यह कार्य जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है।' अवश्य ही जो विधवा ब्रह्मचर्यसे रहना चाहती है उसे पुनर्विवाहके लिए लाचार करना, अथवा जो कई बालबच्चोंका बाप परलोककी तैयारी कर रहा है उसे १०-११ वर्षकी कन्याके साथ पुनर्विवाह करनेकी इजाजत देना पापका कार्य है और इस कारण जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है। बड़े पापसे बचाकर छोटे पापकी इजाजत देना जैनधर्मसे विरुद्ध कभी नहीं हो सकती। जो इसे धर्मविरुद्ध बतलाते हैं वे धर्मका स्वरूप ही नहीं समझते हैं। जैनधर्ममें प्रत्येक मनुष्यको उसकी शक्तिके और स्थितिके अनुसार धीरे धीरे सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ानेकी विधि है। जो जिस योग्य होता है उसे उसी चरित्रके धारण करनेका विधान किया जाता है। जो अगणित प्रकारके जीवोंका मांस खाता था, उसे एक कौएके मांसको छोड़नेका उपदेश दिया गया था। हाथीको छना हुआ पानी नसीब नहीं होता था, इस कारण वह तालाबके पानीको मचाकर-बिलोकर-प्रासुक कर लेता था और फिर उसे पीता था।

पण्डित प्रवर आशाधर और सोमदेवसूरिने ब्रह्मचर्यके तीन भेद किये हैं-एक स्त्री मात्रका त्यागी, और दूसरा अपनीको छोड़कर शेष सबका त्यागी और तीसरा अपनी स्त्री और वेश्याको छोड़कर अन्य सबका त्यागी। इस तीसरेको आचार्य सोमदेवने गृहीका ब्रह्मचर्य कहा है:—

वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥

पं० आशाधरके शब्द ये हैं:— "**यस्तु स्वदारवत्साधारणस्त्रियोऽपि व्रतयितुमशक्तः परदारानेव वर्जयति सोऽपि ब्रह्माणुव्रतीष्यते।**" अर्थात् जो, जिस तरह अपनी स्त्रीका त्याग नहीं कर सकता है उसी प्रकार वेश्याका भी त्याग नहीं कर सकता है, केवल पराई स्त्रियोंका त्याग करता है वह भी ब्रह्मचर्याणुव्रती है। जो लोग गतानुगतिक और विचारबुद्धिसे रहित हैं, वे इस बातको कभी नहीं मान सकते कि वेश्यागामी भी ब्रह्मचारी कहल सकता है। वे सोमदेव और आशाधरको सैकड़ों गालियाँ सुनायँगे और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभी कुछ समय पहले जैनगजटके किसी लेखकने सुनाई भी थीं; परन्तु जो मर्मज्ञ हैं वे इसे माननेसे कभी इंकार नहीं कर सकते। उक्त विद्वानोंने ब्रह्मचर्यकी जुदा जुदा सीढ़ियाँ बतलाई हैं। जो वेश्यासे सम्बन्ध करता है वह पापी है इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु यहाँ केवल पापका विचार नहीं है--पापके दर्जोंका विचार है। यह देखना है कि कौन पाप छोटा है और कौन बड़ा है। जैनधर्मकी दृष्टिसे तो वेश्यागमन ही क्यों स्वस्त्रीगमन भी पाप है। परन्तु सबसे बड़ा पाप है, पराई स्त्रियोंसे सम्बन्ध, उससे छोटा है वेश्याओंसे सम्बन्ध, और उससे छोटा है अपनी स्त्रीसे सम्बन्ध। अतः परस्त्रीगमनकी अपेक्षा वेश्यागमन और वेश्यागमनकी अपेक्षा स्वदारसन्तोष अच्छा है; पर स्वतः तीनों ही अच्छे नहीं हैं--तीनों ही--पाप हैं। जो उत्तम पात्र है, उसे शुद्ध ब्रह्मचर्यका, जो मध्यम है उसे स्वदारसंतोषका और जो निकृष्ट है उसे परदारनिवृत्तिका उपदेश दिया जाता है। ठीक इसी दृष्टिसे पुनर्विवाहका विचार होना चाहिए। विधवाविवाह या विधुरविवाहको कोई पुण्य नहीं बतलाता है। अवश्य ही यह पाप है; परन्तु उस पापकी अपेक्षा अच्छा है--ऊँचे दर्जेका है जिसके कि कारण प्रति दिन सैकड़ों भ्रूणहत्यायें और गर्भपात किये जाते हैं और इसी कारण जो अपनी इन्द्रियोंके गुलाम हैं उनके लिए यह आचरणीय है। जिन पण्डित और उपदेशक महाशयोंने इसे जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध और दुष्कृत्य बतलाया है, वे क्या कृपा करके बतलावेंगे कि वेश्यागामी गृहस्थका ब्रह्मचर्य जैनधर्मसे अत्यन्त अविरुद्ध और सत्कृत्य कैसे हो सकता है? क्या उनकी समझमें किसी विधवाके साथ पुनर्विवाह करनेवाला गृहस्थ उक्त वेश्यागामी गृहस्थसे भी बुरा है? एक ब्रह्मचारिणी बालविधवाकी इज्जत क्या बाजारू वेश्याके भी बराबर नहीं हो सकती है? हमें आशा है कि विद्वान् जन इस विषयमें निरपेक्ष होकर विचार करनेका कष्ट उठायँगे।

७ जैनहितैषीका निषेध।

जैनहितैषीके किसी एक लेखका निषेध तो किया जा सकता है; परन्तु यह समझमें नहीं आया कि पं० कस्तूरचन्दजीने जैनहितैषीका निषेध क्या समझकर कर डाला! क्या आपकी उपदेश-मुखरा बुद्धिमें अभी तक यह बात नहीं आई कि पत्रसम्पादक अपने पत्रके प्रत्येक लेखका उत्तरदाता नहीं होता है? वह किसी एक विषयके निर्णयके लिए अपने अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकारके विचारोंका प्रकाश करता है; यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक लेख उसीके विचारोंके अनुकूल हो। उसका सबसे बड़ा उद्देश्य 'सत्य' के निर्णयका रहता है, आप लोगोंके समान लकीरके फकीर बने रहनेका नहीं। यदि हितैषीमें एक लेख पुनर्विवाहके अनुकूल प्रकाशित हुआ है तो आप चिन्ता क्यों करते हैं प्रतिकूल लेख भी प्रकाशित होंगे। अभी तो इस विषयका प्रारंभ ही हुआ है। यदि आप प्रतिकूल लिख सकते हैं, तो कुछ लिखनेकी कोशिश कीजिए। पर यहाँ उन पुरानी जंग खाई हुई युक्तियोंसे काम न चलेगा जिन्हें सुनकर आपके भोले भाले श्रोता तालियाँ पीटने लगते हैं। क्योंकि जैनहितैषीके पाठक इस बीसवीं शताब्दिके हैं और आपकी युक्तियाँ दशवीं शताब्दिके कामकी हैं। आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आपके उपदेशोंसे और प्रतिज्ञाओंके करानेसे हितैषीके ग्राहक कम नहीं हो सकते; क्योंकि जिन लोगोंपर आपका प्रभाव पड़ता है--जो लोग आपके संकीर्ण विचारोंपर श्रद्धा रखते हैं, उन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ढूँढ़नेपर भी जैनहितैषीका कोई ग्राहक न मिलेगा। हितैषीके प्रायः ग्राहक ऐसे ही हैं जिन तक आपके प्रभावकी पहुँच नहीं और जो आपसे अधिक विवेक-बुद्धि रखते हैं। और अपने ग्राहकोंकी योग्यता पर हमें यथेष्ट अभिमान है। यदि दश बीस आपहीकी योग्यताके ग्राहक आपकी प्रेरणासे घट जायँगे, तो इससे हमें यह समझकर खुशी ही होगी कि विधाताके निकट हमारी यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई—**अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।**"

८ प्रगति-सम्पादकका मार्मिक नोट।

सहयोगी 'प्रगति आणि जिनविजय' में उसके सुयोग्य सम्पादक गजपंथक्षेत्रके अधिवेशनकी समालोचना करते हुए लिखते हैं—

" दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभाके आधिवेशनमें एक विदुषी स्त्रीका व्याख्यान होनेवाला था; परन्तु उसे पं० धन्नालालजीके आग्रहके कारण आज्ञा नहीं दी गई और इस तरह जैनधर्मपर आया हुआ एक भयंकर संकट टल गया! नहीं तो भला कितना बड़ा अनर्थ हो गया होता! अच्छा हुआ जो पण्डितजीने जैनसमाजको इस संकटसे मुक्त कर दिया! इस सभामें दूसरा महत्त्वका प्रस्ताव यह हुआ कि विधवाविवाहके अनुकूल लेख लिखनेवाले पत्रोंका निषेध किया जाय! यह प्रस्ताव भी बहुत दूरदर्शिताका हुआ! जैनसमाजमें स्त्रियोंकी संख्या कम है। इसके कारण हजारों जैनपुरुषोंको अविवाहित रहना पड़ता है। रहने दो; इससे कुछ हानि नहीं! इससे पुरुषोंमें अनाचार बढ़ता है। तो भी कुछ हानि नहीं! इसके कारण विधवाओंमें दुराचार फैलता है। तो भी क्या हुआ? इस विषयमें कुछ कहना ही न चाहिए। इससे जैनसमाजका ह्रास होता है। होने दो; जो होनेवाला है वह होकर रहेगा। इस तरह शंका-समाधान हो जाने पर भी जैनहितैषी आदि पत्र विधवाविवाहके विषयमें लेख क्यों प्रकाशित करते हैं? उनका निषेध होना ही चाहिए। जैनमित्रके कथनानुसार तो विधवाविवाहका समर्थन करनेवालोंको मौन धारण करना चाहिए। वे आपसमें चर्चा करें, गुप्तरूपसे सम्मतियाँ दें अथवा बाला बाला उत्तेजन दें, कुछ हर्ज नहीं; पर दश आदमियोंमें—सभासोसाइटियोंमें इस विषयकी चर्चा करनेकी क्या जरूरत?"

९ यज्ञोपवीत और जैनधर्म।

हितैषीके पिछले संयुक्त अंकमें उक्त विषयका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें हमने लिखा था कि एक दो श्वेताम्बर विद्वानोंसे मालूम हुआ कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके शास्त्रोंमें भी यज्ञोपवीतकी क्रियाका विधान नहीं है। इसपर सहयोगी 'जैन' के गत २ अप्रैलके अंकमें 'सत्याकांक्षी' की सहीसे किसी महाशयने लिखा है कि "श्वेताम्बर—साहित्यमें 'आचार दिनकर' इत्यादि बहुतसे ग्रन्थोंमें यज्ञोपवीतकी क्रियाका सहेतुक विवरण है। लेखक महाशय उसमें देख लेनेकी कृपा करें जिससे खुलासा होगा और आगामी अंकमें अपनी भूल सुधारनेकी कृपा करें।" इसके उत्तरमें हम श्वेताम्बरसम्प्रदायके एक विद्वान् साधु महाशयके पत्रको प्रकाशित कर देते हैं जिसे उन्होंने हमारी जिज्ञासानिवृत्तिके लिए अभी कुछ ही दिनों पहले भेजा था। साधु महोदय जैनधर्मके और इतिहासके बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। इससे यज्ञोपवीतके मूलविषयपर भी बहुत अच्छा प्रकाश पड़ेगा—

" यज्ञोपवीतविषयक लेख पढ़ा। मेरे विचारसे यह प्रथा बहुत पुरानी नहीं; ब्राह्मणोंके संसर्गसे मध्यकालमें प्रविष्ट हो गई है। श्वेतांबरोंमें जनेऊ पहननेका रिवाज नहीं है। पुराने- जमानेमें भी पहननेका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

" संवत् १५०० के आसपास वर्धमानसूरि नामके एक आचार्य हो गये हैं । उन्होंने ' आचार दिनकर ' नामका विस्तृत ग्रन्थ गृहस्थोंके आचार विषयमें लिखा है । इस ग्रन्थमें अन्यान्य आचारोंके साथ १६ संस्कारोंका भी विधान है । आधुनिक ब्रह्मसमाज और आर्यसमाजने जैसे अपने अपने मन्तव्यानुसार नये ढंगसे संस्कारोंका विधान किया है वैसे ये संस्कार भी जैनदृष्टिसे जैनत्व लानेके लिए विहित किये गये हैं । इन संस्कारोंमें एक ' उपनयन ' संस्कार है जिसमें जैनधर्मका आराधन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको ' जिनोपवीत' देनेका विधान है । (' यज्ञोपवीत ' के स्थानपर ' जिनोपवीत ' नाम रक्खा है जो ग्रन्थकारके कौशलका सूचन करता है ।)

" केवल इस एक ग्रन्थके सिवा अन्य किसी पुराने या नये ग्रन्थमें न कहीं इस विषयका विधान है और न कोई उल्लेख ही मिलता है । इस ग्रन्थमें विहित विधान आदरणीय है या अनादरणीय, इसका जिक्र आजतक किसीने नहीं किया । स्वर्गीय श्रीमदात्मारामजी महाराजने, सबसे पहले इन संस्कारोंका प्रकाशन अपने ' तत्त्वनिर्णयप्रासाद ' में किया है । इसके बाद कुछ लोगोंके विचार इन संस्कारोंको प्रचलित करनेके पक्षमें सुनाई देते हैं ।

" इतिहास और तत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो जैनत्वकी छापवाले व्यवहारोंका अस्तित्व हो ही नहीं सकता । जैन एक प्रकारका धर्म विशेष है, समाज या जाति-विशेष नहीं । व्यवहार जितने हैं वे सब, समाज और जातिविशेषके साथ सम्बन्ध रखते हैं । जैन-जीवन जगत् मात्रके मनुष्य—पशुतक भी धारण कर सकते हैं । ऐसी दशामें व्यावहारिक नियमोंके विषयमें किसी प्रकारका स्वतंत्र नियम जैनधर्म नहीं बना सकता; उसका यह कार्य नहीं । जगतकी भिन्न भिन्न जातियों और समाजोंके रीति-रिवाज जुदा जुदा प्रकारके हैं । किसी देश और जातिवाले मुर्देको जला देते हैं, कोई जमीनमें खड्डा खोदकर गाड़ देते हैं और कोई यों ही जंगलमें फेंक आते हैं । जैनधर्मके सिद्धान्तानुरूप इन सब जातियोंके मनुष्य जैनधर्मका आराधन उत्कृष्टतया कर सकते हैं, तो अब फिर इनके लिए कौन सी रीति नियमित की जाय ? जैनदृष्टिसे तीनों कृत्य— जला देना, गाड़ देना या फेंक देना—एकसे हैं । जैनधर्म व्यवहारके विषयमें बिल्कुल मौन है । चाहे मुर्दा जलाया जाय, चाहे गड़ाया जाय, वह इस विषयमें किसी भी विधिको धर्म्य नहीं बतलाता । ऐसी अवस्थामें जैनधर्मसे व्यावहारिक नियम बनाये नहीं जा सकते । जो मनुष्य जिस देश और जातिका हो वह अपना लौकिक व्यवहार अपने देशजात्यनुसार चलावे, धर्म उसमें कुछ नहीं कहता । केवल धर्माचरणमें जैनत्वकी आवश्यकता है । जैनधर्म केवल ' निवृत्तिमार्गविधायक ' है प्रवृत्तिका उपदेशक नहीं । हाँ, यह अवश्य वह कह देगा कि अमुक प्रवृत्ति अधिक कर्मजनक है और अमुक अल्प पापवाली ।

" वैदिक धर्मकी दृष्टिमें और जैनधर्मकी दृष्टिमें बड़ा अन्तर है । यह बात हमेशा ध्यानमें रहनी चाहिए । वैदिक धर्म व्यवहारप्रवृत्तिको भी धर्मके साथ संलग्न रखना चाहता है । वह व्यवहार और धर्मका अभेद संबन्ध मानता है, इसलिए कुल व्यवहारोंमें वह अपना दखल रखना चाहता है । जैनधर्मकी यह मानता नहीं । जैनधर्म तो कहता है कि कर्मजनक सब ही प्रवृत्तियाँ अधर्ममें शामिल हैं । ऐसी प्रवृत्तियोंका विधान निवृत्तिपरायण जैनधर्ममें कैसे हो सकता है ! इत्यादि बहुत कुछ बातें विचारने लायक हैं । वर्णाश्रमके विषयमें भी यही हाल है । मैं अभी मुसाफिरीमें हूँ साथमें किसी भी प्रकारका साहित्य नहीं है—लिखनेके लिए कागज भी यथेष्ट नहीं है ! ..... "

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशा है कि सत्याकांक्षी महाशयको इस पत्रसे सन्तोष हो जायगा और अन्यान्य पाठकोंको यज्ञोपवीतके मर्मको समझनेमें सहायता मिलेगी।

१० महात्मा गाँधी और मातृभाषा।

हितैषीके पाठकोंको मालूम होगा कि 'भारत-जैनमहामण्डल' के गत दिसम्बरके अधिवेशनमें हमारे अँगरेजीभक्त भाइयोंने लगभग एक हजार श्रोताओंके सामने—जिनमें अँगरेजी जाननेवालोंकी संख्या मुश्किलसे १०० होगी—अपने विचार अँगरेजीमें प्रकट किये थे। एक दिनकी तो सारी कार्रवाई अँगरेजीहीमें की गई थी और उस समय थोड़ेसे इने गिने लोगोंको छोड़कर शेष सभी उनका मुँह ताकते रहे थे। ठीक यही हाल संगामपुर—सूरतकी एक सभामें भी हुआ। महात्मा गाँधीके हाथसे वहाँ एक जैनपुस्तकालय खोला जानेवाला था। और इसके लिए एक सभा की गई थी। यद्यपि उस सभामें भी अधिकांश श्रोता अँगरेजीसे अनभिज्ञ थे, तो भी कुछ जैनविद्यार्थियोंका जी नहीं माना—उन्होंने अपने विचार अँगरेजीमें ही प्रकट करना उचित समझा। जब उनके अँगरेजी व्याख्यान हो चुके तब माहात्मा गाँधीने अनेक उपदेश देते हुए जो कुछ कहा उसे हम 'सरस्वती' से यहाँ उद्धृत कर देते हैं। हम आशा करते हैं कि मण्डलके सभासद् महात्मा गाँधीके बहुमूल्य शब्दोंपर ध्यान देनेकी कृपा करेंगेः—

"यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है कि अँग्रेजीमें व्याख्यान देनेवाले विद्यार्थी इतना भी विचार नहीं करते कि जिनके सन्मुख वे बोल रहे हैं वे उनका व्याख्यान समझ सकेंगे या नहीं। वे नहीं सोचते कि यहाँपर जो अँगरेजी समझनेवाले उपस्थित हैं वे इस त्रुटिपूर्ण अशुद्ध अँगरेजी-भाषासे आनन्द प्राप्त करेंगे, या उनके हृदयमें अरुचि उत्पन्न होगी। चढ़ती उमरके युवकोंको मातृ-भाषासे पराङ्मुख होकर पर-भाषा पर इतना मुग्ध होना शोभा नहीं देता। यह बड़ी ही शोकजनक स्थिति है। विदेशी संसर्गके कारण देशमें नवीन युग उपस्थित हुआ सही; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें अपनी भाषा छोड़कर विदेशी भाषाहीमें अपने विचार प्रकट करना चाहिए। जिस भाषाको व्याख्यान देनेवालोंके माता-पिता नहीं जानते, जिसको उनके बहन-भाई नहीं समझ सकते और जिसको उनके स्त्री-पुत्र तथा नौकर-चाकर नहीं समझ सकते, उसका सेवन करनेसे नवीन युग समीप आयेगा कि दूर चला जायगा, इसपर उनको अवश्य विचार करना चाहिए। कितने ही मनुष्योंका ख्याल है कि अँगरेजी अब हमारी मातृ-भाषा है। परन्तु यह ख्याल मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। यदि अँगरेजी जाननेवाले मुट्ठीभर लोगोंको हम 'देश' मानलें तो यह कहना पड़ेगा कि 'देश' शब्दका ठीक अर्थ ही हमने नहीं समझा। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि ३२ करोड़ मनुष्योंका अँगरेजी सीखना और अँगरेजीका देशभाषा होजाना नितान्त असम्भव है। जिन नव-युवकोंने नई विद्या सीखी है और जिन्होंने नये विचारोंसे लाभ उठाया है, उनको अपने विचार अपने देशभाइयोंपर अवश्य प्रकट करना चाहिए। यह बात अपनी ही भाषाद्वारा हो सकती है। जो युवक यह कहते हैं कि हम अपने विचार मातृभाषाद्वारा नहीं प्रकट कर सकते उनसे मैं यही निवेदन करूँगा कि आप मातृ-भूमिके लिए भाररूप हैं। मातृ-भाषाकी अपूर्णता दूर करनेके बदले उसका अनादर करना—उससे हाथ ही धो बैठना—किसी सच्चे सपूतको शोभादायक नहीं। वर्तमान जनसमुदाय मातृ-भाषाकी उन्नतिके विषयमें चुप रहेगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो भावी प्रजाको चिरकाल तक पछताना पड़ेगा। उलहनेसे वे कभी नहीं बचेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यहाँ बैठे हुए समस्त विद्यार्थी प्रतिज्ञा करेंगे कि निरुपाय दशाके सिवा और कभी भी हम अपने घर पर अँगरेजी न बोलेंगे। विद्यार्थियोंके माता पिता भी समयकी खरतर धारामें बह जानेसे सावधान रहें। अँगरेजी भाषा हमे पढ़ना अवश्य चाहिए, किन्तु मातृभाषाको भुलाकर नहीं। हमारे जनसमाजका सुधार हमारी मातृभाषा द्वारा ही होगा। मातृभाषाकी उन्नति करना विद्यार्थियों और उनके माता पिताओंका भी कर्तव्य है। मैं प्रसन्न हूँ कि यह पुस्तकालय मेरे हाथसे खोला जा रहा है। पर, यदि यह अपनी भाषाकी पुष्टि न करके उसे क्षीण करेगा तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा।"

११ प्रान्तिक सभाके सभापतिका व्याख्यान।

दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक सभा बम्बईके इस अधिवेशनमें सभापतिका आसन आलन्दनिवासी शेठ माणिकचन्द मोतीचन्द शहाने स्वीकार किया था। मालूम नहीं स्वयं आपको जैन-समाजसे कितना परिचय है और आपकी योग्यता कैसी है; परन्तु आपने जो व्याख्यान पढ़ा, वह अच्छा लिखा गया है। यद्यपि उसमें विशेष जोश या उत्तेजना नहीं है, तो भी जैनसमाजका उसमें खासा परिचय दिया गया है। कहीं कहीं नये विचारों और सुधारोंकी 'ढंगके साथ' हिमायत की गई है। अछूत और नीच जातियोंको शिक्षित बनानेके लिए कहा गया है—"नीच मानी हुई जातियोंके लड़कोंको ज्ञान दिया जायगा तो उसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधेंगे। इस समय वे अशिक्षित हैं, इस लिए हिंसा, चोरी, डकैती आदि नीच कर्म करके पेट भरते हैं—हमारे ही घरोंपर डाँके डालते हैं, हमारे ही घरोंकी चोरियाँ करते हैं और हमारे ही पशुओंको मारकर खाजाते हैं। अतः यदि उन्हें शिक्षा दी जायगी, तो वे अपनी आजीविका न्यायमार्गसे करने लगेंगे। इससे उनका कल्याण होगा और हमारे घरोंमें चोरी आदि उपद्रव न होंगे। हमारे तीर्थक्षेत्रोंके निकट रहनेवाले जो भील आदि अनार्य्य लोग हैं, उनके लड़कोंके लिए यदि हम पाठशालायें खोल देंगे, तो वे लड़के बड़े होनेपर नौकरी चाकरी या और कोई व्यापार करके अपना पेट भरने लगेंगे।" जैनोंकी जनसंख्या कम होती जाती है, इस विषयमें सेठजीने दो कारण बतलाये हैं एक जैनधर्मानुयायी अन्य धर्म स्वीकार करने लगे हैं और दूसरा प्लेग। पहले कारणको ठीक बतलाते हुए कहा है कि "सतारा, पूना, अहमदनगरके कासार लोग धर्मोपदेशके अभावसे अपनेको हिन्दू कहलवाते हैं और निजाम स्टेटके जैनोंका भी यही हाल है।" यह हम मानते हैं कि कुछ लोगोंने पिछले १० वर्षोंमें जैनधर्म छोड़ दिया होगा; परन्तु वह इतना बड़ा कारण नहीं है। इस विषय पर विशेष विचार इसी अंकमें प्रकाशित हुए श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठीके लेखमें किया गया है। उसमें यह भी बतलाया गया है कि प्लेग भी जैनसंख्याकी हानिका प्रधान कारण नहीं है।

१२ रोटी-बेटी व्यवहार।

प्रान्तिक सभाके स्वागतकारिणी कमेटीके सभापति सेठ नवलचन्द-हीराचन्दजीने अपने व्याख्यानमें कहा कि "प्राचीन कालमें जब रेल, तार, डाँक, आदिके सुभीते न थे, तब लोग रोजगार-धंधेका तथा ब्याह शादियोंका सम्बन्ध अपने समीपके ग्रामोंसे ही रखना चाहते थे और इस कारण एक भागके रीति रिवाज, वेष-भूषा आदि दूसरे भा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से जुदा प्रकारके हो गये थे! जातियोंकी छोटी छोटी संस्थायें भी उसी समय स्थापित हुई होंगी, ऐसा मालूम होता है। परन्तु अब समय बदल गया है। यह सुधारका जमाना है। जब रहन-सहन, वेष-भूषा, भाषा आदि सभी बातें बदल गई हैं; तब पुराने रीती-रिवाज ही कैसे स्थिर रहेंगे? उस समयकी रहन-सहन, वेषभूषा, आचार-विचार तो बदल जावें; परन्तु उस समयकी परिस्थितियोंके अनुसार बनाये हुए रीतिरिवाज न बदले जावें, इसके समान मूर्खतापूर्ण कार्य और क्या हो सकता है? इन रिवाजोंमें सबसे प्रधान रिवाज 'ब्याह' का है। जातियोंके छोटे छोटे टुकड़े हो गये हैं, इस कारण वरके योग्य कन्या और कन्याके योग्य वर नहीं मिलते हैं। जिन जातियोंमें कन्यायें कम हैं, उनमें बेजोड़ ब्याह अधिक होते हैं और सैकड़ों युवाओंको जीवन भर कुआँरा रहना पड़ता है। इसके सिवाय कहीं कहीं श्वेताम्बर या वैष्णव कन्यायें लानी पड़ती हैं। इन सब संकटोंके दूर करनेके लिए दिगम्बरजैनसमाजमें जातियोंकी भिन्नताके बिना ब्याह होना चाहिए। जहाँ रोटी-व्यवहार है वहाँ बेटी-व्यवहार भी होना चाहिए।" इसमें श्वेताम्बर और वैष्णवोंकी कन्याओंके साथ विवाह करना अच्छा नहीं बतलाया गया। परन्तु हम इस सम्बन्धको बुरा नहीं समझते। अग्रवाल ओसवाल आदि जातियोंके समान जो ऐसी जातियाँ हैं जिनमें जैन और वैष्णव, अथवा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों धर्म पाले जाते हैं उनमें इस प्रकारके सम्बन्ध अकसर होते हैं और ये सम्बन्ध हमें प्राचीन भारतकी धार्मिक स्वतंत्रता और उदारताका आज भी स्मरण कराते हैं। भारतमें एक समय ऐसा था जब मनुष्य अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्मको पालन करनेके लिए स्वतंत्र था और इसीका यह फल था कि एक घरमें जैन, बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म साथ साथ प्रेमपूर्वक पाले जाते थे। राजा श्रेणिक बौद्ध थे और उनकी रानी चेलना जैन थी। यह बहुत ही प्रसिद्ध कथा है। ये सम्बन्ध किसीतरह हानिकारक नहीं हो सकते। ये हमारे महत्त्वके द्योतक हैं। इनके बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए, न कि घटानेका।

१३ श्वेताम्बर-जैन-कान्फरेन्स।

गत २३, २४ और २५ अप्रैलको श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्सका दशवाँ अधिवेशन धूमधामके साथ हो गया। सभामें दो ढाई हजार श्रोता उपस्थित होते थे। बाहरसे भी बहुतसे लोग आये थे। हमारी दिगम्बरसभाओंके अधिवेशनोंकी अपेक्षा इस कान्फरेन्सके अधिवेशनमें कई एक विशेषतायें थीं। सबसे बड़ी विशेषता सभा-शुल्ककी थी। दो, तीन, पाँच और दश रुपयेके टिकिट थे। साधारण दर्शकोंका टिकिट दो रुपयाका था। इससे कमका टिकिट कोई भी न था। बिना टिकिटके किसीको भी भीतर जानेका अधिकार न था। इस नियमकी पालना भी कड़ाईसे होती थी। टिकिटोंसे सुनते हैं कि लगभग छह हजार रुपयेकी आमदनी हो गई! यदि हमारी महासभा या प्रान्तिक सभाके किसी जल्सेमें इस प्रकारका प्रबन्ध किया जाय, तो शायद सभामंडपमें २०० श्रोता भी उपस्थित न हों। एक तो बम्बई अहमदाबाद जैसे बड़े शहरोंमें रहनेवाले लोग यों ही खर्चीले होते हैं और दूसरे इन स्थानोंमें श्वेताम्बर धानिकोंकी संख्या भी अधिक है। यही कारण है जो यहाँ टिकिट होने पर भी लगभग दो ढाई हजार श्रोता सभामें उपस्थित हो गये। हो जायँ, पर यह रीति अच्छी नहीं। कमसे कम जैनसमाजमें तो अभी इसके प्रचलित करनेकी जरूरत नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इससे वे लोग सभाके लाभोंसे वंचित रह जाते हैं जो धनहीन हैं अथवा उपदेशको मूल्य देकर लेने योग्य अभिरुचि नहीं रखते हैं । शिक्षा और समाजोन्नतिके विचारोंको हम जितना सुलभ और सहज कर सकें उतना करना चाहिए। दूसरी विशेषता यह देखी कि धनी और पुराने ख़यालके लोगोंके साथ अनेक ग्रेज्युएट–वकील, बैरिस्टर, सालीसिटर, डाक्टर–काम करते थे । हमारे दिगम्बर समाजमें यह बात नहीं है । हमारे यहाँ पण्डितों और बाबुओं तथा धनियोंमें इतना मतभेद तथा मतासहिष्णुता है कि वे बिना लड़े-झगड़े मिलकर काम कर ही नहीं सकते । हमारे यहाँ कट्टरता ज्यादा है और हमारी जनता नवीन सुधारके विचारोंसे बहुत ही अनभिज्ञ है । साथ ही हमारे यहाँ धर्मतत्त्वोंके जाननेकी डींग हाँकनेवाले अर्द्धदग्ध लोग बहुत हैं जो हर जगह धर्मके डूब जानेका रोरा मचानेके लिए तैयार रहते हैं । सभापतिका आसन बड़ौदाके डाक्टर श्रीयुक्त बालाभाई मगनलाल नाणावटीने सुशोभित किया था । आप बड़ोदा महाराजके खास डाक्टर हैं और देशोपकारके कामोंमें हमेशा योग दिया करते हैं ।

१४ सभापतिके व्याख्यानकी कुछ बातें ।

डाक्टर साहबका व्याख्यान खासा था । पुस्तकोद्धारके विषयमें कहते हुए आप बोले–"फिजूलके मुक़द्दमें लड़नेमें, जैनधर्मकी झूठी प्रभावना प्रकट करनेमें और जाति-रिवाजोंकी खर्चीली सेवा बजानेमें हमारा जैनसमाज प्रति वर्ष लाखों रुपया खर्च कर डालता है; परन्तु जिस ज्ञानके लिए हम अभिमान करते हैं, जिस धर्मकी प्राप्तिके कारण हम अपने जन्मको सार्थक मानते हैं और भगवान् महावीर स्वामीके अनुयायी कहलानेमें अपनेको भाग्यशाली समझते हैं, उस ज्ञान और धर्मके ग्रन्थोंको अन्धेरेमें डाल रखनेमें हमें जरा भी संकोच नहीं होता है । यह बहुत ही शोककी बात है । पुस्तकोंकी रक्षा और प्रचारके लिए तो हमें धन नहीं मिलता; परन्तु ज्योनारोंके लिए, ब्याह शादियोंके जुलूसोंके लिए और निरर्थक धार्मिक मुकद्दमे लड़नेके लिए रुपयोंकी कभी कमी नहीं पड़ती ! " समाज-संगठनके विषयमें आपने कहा–" हमारी वर्तमान सामाजिक रचना ऐसी है कि हम धार्मिक और आर्थिक उन्नति करनेके लिए चाहे जितना प्रयत्न करें तो भी अच्छी स्थिति प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि हम अपने धर्मके सिद्धान्तोंके और समाजरचनाके विरुद्ध छोटी छोटी जातियों और उपजातियोंमें बँट गये हैं और इससे एक साथ काम करनेकी शक्ति घटती जाती है । अनेक बातोंमें हमारे विचार भी संकुचित होते जाते हैं और समाजबल कम होता जाता है । इससे जब हम सारे जैनसमाजके प्रश्नोंको हाथमें लेना चाहते हैं, तब हमारे कार्यमें तरह तरहके विघ्न आ पड़ते हैं । गत पचास वर्षके इतिहाससे मालूम होता है कि हमारी जुदी जुदी जातियाँ परस्पर मिलती तो नहीं हैं, उलटी उपजातियाँ बढ़ती जाती हैं, और तड़ें पड़ती जाती हैं ! जैनजातिको छोड़कर अन्य जातियोंके साथका सम्बन्ध कम होता जाता है और जैनधर्मका पालन करनेवाली एक ही जातिकी अन्तर्जातियोंके साथका सम्बन्ध भी घटता जाता है । अर्थात् एक ही जातिके जुदा जुदा प्रदेशोंमें रहनेवाले लोगोंका सम्बन्ध वर्तमान डाँक, रेल, तार आदिके उत्तम साधन मिलने पर भी बढ़नेके बदले संकुचित होता जाता है । व्यवहारका क्षेत्र इस तरह संकीर्ण होनेके कारण कन्याविक्रय, वरविक्रय, बाल्यविवाह, वृद्धविवाह आदि हानिकारक रिवाजोंको उत्तेजन मिला है । इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी सामाजिक और शारीरिक दशा बिगड़ती जा रही है, तथा बन्धुभावका कार्यक्षेत्र संकुचित होकर एकता होनेके बदले फूट बढ़ती जाती है । हमें समझना चाहिए कि वर्तमानका जातिसंगठन हमारे धर्म और समाजशास्त्रके नियमोंसे विरुद्ध है। अतः इस मुख्य और महत्त्वके प्रश्नकी ओर सबको ध्यान देना चाहिए।" अपना दूसरे सम्प्रदायोंके साथ और देशके साथ सम्बन्ध बतलाते हुए आपने कहा—"हमें यह न भूलजाना चाहिए कि हमें जैनसमाजके दूसरे पन्थोंके साथ हिल मिलकर रहना है तथा भारतनिवासी होनेके कारण हमें अपने देशसंबन्धी कर्तव्य भी करने हैं और अनेक सत्व प्राप्त करने हैं। सारी जैनजातिके हितके लिए 'जैन एसोसियेशन आफ इंडिया' तथा 'भारत जैनमहामण्डल' आदि संस्थायें स्थापित हुई हैं। इन संस्थाओंके साथ रहकर भी हमें काम करना है। हम सब भगवान् महावीर स्वामीके पुत्र हैं और थोड़ेसे मत मतान्तरोंको यदि हम न गिनें तो हम सबकी मानता भी एक ही है। सबका अन्तिम साध्य मोक्षप्राप्ति ही है। अतएव बन्धुभावकी विशाल भावनाके साथ हम सबको मिल कर जैनजातिकी भलाई करनेके यत्न करना चाहिए।" व्याख्यानके अन्तमें आपने निम्नलिखित बहुमूल्य इच्छा प्रकट की "मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि हमारा समाज धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक विषयोंमें आगे बढ़े, एकताके सूत्रमें बँधे और उच्चजीवन व्यतीत करने लगे। उसकी प्रत्येक व्यक्ति पहले मनुष्यत्वके और पीछे जैनत्वके कर्तव्योंका पालन करनेके लिए शक्तिवान् बने और अन्तमें इस भव और परभवके सुधारनेके लिए बुद्धिपूर्वक तत्पर हो।"

१५ कान्फरेंसके प्रस्ताव।

कान्फरेंसने सब मिलाकर १८ प्रस्ताव पास किये, जिनमें दश प्रस्ताव केवल शिक्षासम्बन्धी थे। यह अब अच्छी तरहसे निश्चित होता जाता है कि उन्नतिके तमाम साधन शिक्षाके हाथमें हैं, इसलिए सबसे अधिक जोर शिक्षा पर ही देनेकी जरूरत है । बम्बईके शिक्षाखातेके डायरेक्टरने जैन विद्यार्थियोंके शिक्षासम्बन्धी अंक प्रकाशित करनेकी स्वीकारता दे दी है। इसलिए कान्फरेंसने बम्बईके शिक्षाखातेको धन्यवाद देने और अन्यप्रान्तोंके शिक्षाखातेको प्रेरणा करनेका भी एक प्रस्ताव पास किया। दिगम्बर कान्फरेंसको भी इस विषयमें प्रयत्न करना चाहिए । इससे हमें अपनी शिक्षाकी दशाका ज्ञान होगा । एक प्रस्ताव हिन्दी-यूनीवर्सिटीके सम्बन्धका था । उसमें यूनीवर्सिटीकी स्थापना पर प्रसन्नता प्रकट की गई और उसके संचालकोंसे आग्रह किया गया कि हिन्दूधर्मके समान जैनधर्मकी शिक्षाका भी वे प्रबन्ध करें। इसी प्रकारका एक प्रस्ताव बम्बई प्रान्तिक सभाके अधिवेशनमें भी पास हुआ है। आशा है कि इस ओर ध्यान दिया जायगा। १५ वाँ प्रस्ताव जैनोंकी संख्यावृद्धिके सम्बन्धमें था। घटती हुई संख्याको बढ़ानेके लिए पाँच उपाय बतलाये गये—१ जिन लोगोंने अपना असली धर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार कर लिया हो उन्हें फिरसे जैनधर्ममें लानेका प्रयत्न करना, २ जैनधर्ममें रुचि रखनेवाले उच्चवर्णके आर्योंको साधुमहाशयोंकी सम्मतिसे जैनधर्ममें दाखिल करनेका यत्न करना, ३ आरोग्यविद्याके नियमोंका ज्ञान जैनसमाजमें फैलाना, ४ सघन वस्तीवाले बड़े शहरोंमें गरीब और साधारण स्थितिके लोगोंके लिए कम किरायेके हवादार मकान और कोठरियाँ बनानेके लिए जैनधनिकोंको प्रेरणा करना । कान्फरेंसने अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गत अधिवेशनमें जैनीमें मृत्युसंख्या अधिक क्यों होती है, इसकी जाँचके लिए एक कमेटी बनाई थी। उक्त कमेटीने इससमय अपनी रिपोर्ट छपाकर बाँटी थी। पाँचवाँ उपाय इस रिपोर्टकी सूचना पर ध्यान देना बतलाया गया। रिपोर्ट बड़े महत्त्वकी है; परन्तु अफसोस है कि वह केवल बम्बई शहरकी है। सारे देशके जैनियोंकी मृत्युसंख्याके विषयमें भी इसी प्रकारकी एक रिपोर्ट प्रकाशित करनेकी जरूरत है। आशा है कि इसकी ओर और और सभायें भी ध्यान देंगी।

१६ तीसरी बैठकमें कुछ विघ्न।

ता० २३ अप्रैलको सभाका काम ११ बजेसे शुरू होनेवाला था और लोग ठीक समयपर उपस्थित भी होगये थे; परन्तु ढाई बजेतक काम बन्द रहा। श्रीयुत पं० फतहचन्द कपूरचन्द लालनका नाम पाठकोंने सुना होगा। आप श्वेताम्बर समाजके बड़े नामी वक्ता, निःस्वार्थ सेवक और विद्वान् पुरुष हैं। आप कई बार यूरोप और अमेरिकाकी सफर कर आये हैं। आपका हृदय बहुत उदार है और समस्त जैनसमाजकी उन्नतिके लिए आप निरन्तर प्रयत्न किया करते हैं। कई वर्ष हुए पालीतानेमें आपकी इच्छाके विरुद्ध कुछ जैन विद्यार्थियोंने आपकी पादपूजा की थी, इस कारण पादपूजाके रजिस्टर्ड अधिकारी कुछ श्वेताम्बर साधुओंने आपके विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया था और उन्हें संघसे बाहर निकाल डालनेके लिए कमर कसी थी। इसका फल यह हुआ कि श्वेताम्बरसमाजमें दो बड़े भारी पक्ष पड़ गये—एक पं० लालनका अनुयायी और दूसरा साधुओंका। यह फूट अभी तक चली आती है और उसीके कारण उस दिनकी बैठकका काम-ढाई बजेतक शुरू न होसका। एक पक्ष चाहता था कि पं० लालनके स्टेजपर व्याख्यान हों; परन्तु दूसरा पक्ष इसका विरोधी था। सभापति महाशयने बड़ी काठिनाईसे विरोध शान्त किया और उस दिनका काम ज्यों त्यों करके समाप्त किया। पं० लालन स्वयं ही उस दिन न आये; उन्होंने अपने कारण कान्फरेंसके काममें बाधा पहुँचे, यह पसन्द न किया। उनके व्याख्यानोंके विना कान्फरेंसकी स्टेज सूनीसी रही। अवश्य ही वीतराग साधुओंको—धर्मके सर्वाधिकारियोंको इससे सन्तोष हुआ होगा।

१७ एक सेठजीके पत्रका उत्तर।

हमारे एक शुभचिन्तक सेठजीने—जो जैनसमाजके बहुत ही प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते हैं—अभी कुछ ही दिन पहले हमें एक पत्र लिखनेकी कृपा की थी जिसमें उन्होंने जैनहितैषीके पहले अंकमें प्रकाशित हुए 'जैनोंकी वर्तमान दशाका चित्र' शीर्षक लेखके सम्बन्धमें हमें उलहना दिया था और हमें सदिच्छावश अनेक उपदेश देनेका कष्ट भी उठाया था। पत्रका उत्तर हमने जो कुछ दिया था, वह यहाँ प्रकाशित कर दिया जाता है। इससे उन सज्जनोंको भी संतोष हो जायगा जिन्होंनें हमें सेठजीके ही समान उलहने देने या उपदेश देनेका कष्ट उठाया था और हम अवकाशाभावके कारण सबको पृथक् पृथक् उत्तर न लिख सके थे। इससे हमारे पाठकोंकी भी अनेक शंकाओंका समाधान हो जायगा:—

"महाशय, धर्मस्नेहपूर्वक जुहारु। आपका ता० २६-३-१६ का कृपापत्र मिला। आपका पत्र पढ़नेसे चार बातोंका पता लगता है—**एक** तो आपको जैनधर्मकी उन्नतिकी बड़ी चिन्ता है, **दूसरे** आप स्वयं यह मानते हैं कि विधवाविवाह जैन समाजको अत्यन्त हानि पहुँचानेवाला और जैनधर्मके पवित्र आदर्शको मिटानेवाला है, **तीसरे** आपकी समझमें विधवाविवाहके प्रश्नकी चर्चा करना मन्दबुद्धिव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोंका काम है और **चौथे** आपकी आज्ञा है कि मैं पहले अंकमें प्रकाशित हुए विधवाविवाहसम्बन्धी लेखका खंडन करूँ। मैं इन चारों ही बातोंपर नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ जिससे आपको मेरे विचारोंका पता लग जाय और आपके पत्रका उत्तर हो जाय।

" यह बड़े ही आनन्दका विषय है कि आपको जैनधर्मकी उन्नतिकी चिन्ता है। सचमुच-ही आपका यह कर्तव्य होना चाहिए कि जिन विचारों या प्रवृत्तियोंसे समाज या धर्मको हानि पहुँचती हो, उन सबको रोकनेका उद्योग करते रहें। हितैषीके जिस लेखपर आपको आक्षेप है उसके विषयमें तो मैं आगे चलकर विचार करूँगा। यहाँ आपका लक्ष्य इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे विचार जो उक्त लेखमें प्रकट किये गये हैं थोड़ी देरके लिए मान भी लिया जाय कि हानिकारक हैं; परंतु यह भी तो सोचिए कि उनकी उत्पत्ति किस कारणसे हुई ? मेरी समझमें बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और विधवाओं पर होनेवाले अत्याचार, ये ही कारण हैं जिन्होंने विधवाविवाहकी चर्चाको जन्म दिया है। मैं पूछता हूँ कि विधवाविवाहकी तो **चर्चा** भी आपको असह्य मालूम होती है, पर बाल और वृद्धविवाहके **कार्य** क्यों असह्य मालूम नहीं होते ? उसकी तो चर्चामें भी अधर्म है और इनके प्रत्यक्ष कार्य्योंमें भी अधर्म नहीं है ! आप कहेंगे कि इन कार्य्योंमें अधर्म तो है, पर किया क्या जाय ? लोग माने तब न ? पर यह उत्तर सन्तोष-जनक नहीं है। आप जैसे प्रतिष्ठित अगुए यदि चाहें-कमर कस लें तो ये पाप-प्रवृत्तियाँ अवश्य बन्द हो सकती हैं। हितैषीमें चर्चा न होने पावे, इसके लिए तो आप कटिबद्ध जान पड़ते हैं, पर इस चर्चाके जन्मदाता पापकार्योंके रोकनेके लिए-आप समर्थ होते हुए भी-कुछ भी उद्योग नहीं करते हैं, यह जानकर आश्चर्य होता है। मान्यवर ! हमारे समाजके अगुए और धर्मात्मा कहलानेवाले लोग ऐसी गाढ़ निद्रामें सोये हुए पड़े हैं कि उनको जगानेके लिए इस तरहकी उत्तेजना फैलानेवाली भयदायक चर्चा उठाना बहुत आवश्यक है। ऐसी भयंकर चर्चाके विना वे जागनेवाले नहीं। विधवाविवाह धर्मदृष्टिसे बुरा है या भला यह दूसरा प्रश्न है, इसका विचार आगे होगा; पर इसमें तो कोई संदेह नहीं कि लोगोंको भयभीत करके जगानेके लिए इससे अच्छा नुसखा और दूसरा नहीं। भला यह भी कोई जैनधर्मका न्याय है कि पुरुष तो पचास और पचपन वर्षकी उम्र तक विषय-भोग करते हुए भी सन्तुष्ट न होकर बारह वर्षकी नासमझ लड़कीका जन्म मिट्टीमें मिला दें और बारह वर्षकी अनाथ विधवा इन्द्रियनिग्रह करनेके लिए लाचार की जाय ? हम लोग तो ऐशो-आरामें जिन्दगी बितावें और स्त्रियोंको दुःखके गढ़ेमें ढकेलकर उनकी ओर नजर उठाकर भी न देखें ? इसका नाम क्या धर्म है ? यदि हम सच्चे जैनी हैं और जैन-धर्मके गौरवका रक्षण करना चाहते हैं तो हमें बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और छोटी छोटी उपजातियोंका अस्तित्व मिटाना ही पड़ेगा। जबतक ये बातें न मिटेंगी तबतक इनसे उत्पन्न होनेवाला विधवा-विवाहका पाप रुक नहीं सकता। जबतक पापोंका मूल बना है, तबतक उनका फल चखना ही होगा। अतः आप जैसे सच्चे समाज-सेवकों-अग्रेसरोंको चाहिए कि विधवाविवाहकी चर्चाको सुनकर क्रोधित न हों, बल्कि इसकी आवश्यकताको खड़ी करनेवाले वृद्धविवाहादि कुकर्मोंको-कमसे कम अपने अपने प्रान्तोंमें-शीघ्र ही बन्द करनेकी कोशिश करें, जिससे कि विधवाविवाहकी आवश्यकता ही न रहे।

" अब मैं जैनहितैषीके लेखके मुद्देपर आता हूँ। इस विषयमें पहले यह जानना चाहिए कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्रसम्पादकोंका कर्तव्य क्या है? प्रबल युक्तिवाले और गालीगलौज जिसमें न हो ऐसा कोई भी लेख कोई प्रसिद्ध लेखक भेजे तो सम्पादकको चाहे वह उससे सहमत हो या न हो; लोगोंको स्वयं विचार करनेका मौका देनेके लिए उसे अपने पत्रमें अवश्य प्रकाशित करना चाहिए। यही पत्र–सम्पादकोंका धर्म है। जिस लेखके विषयमें आप शिकायत करते हैं, वह लेख खास विधवाविवाहके विषयमें नहीं है। जैनसमाजकी तमाम परिस्थितियोंके अनुभवसे उन्नतिके मार्गको बतलाना उस लेखका आशय है। स्त्रियोंके सिवाय और भी बहुतसी बातोंकी–शास्त्रोद्धार, ऐक्य, आत्मबलि आदिकी भी उसमें चर्चा है। इन सब चर्चाओंके पढ़नेसे आपको स्वतः मालूम होजायगा कि लेखक महाशय जैनधर्म और जैनसमाजके सच्चे सेवक, भक्त और शुभेच्छुक हैं। उनके अन्यान्य अनेक लेखों ग्रंथों, और व्याख्यानोंसे मैं परिचित हूँ और उनके निजी वा सार्वजनिक जीवनका भी मुझे बहुत कुछ अनुभव है। मैं कह सकता हूँ कि उनका आशय हमेशा निर्मल और समाजसेवा करनेका रहता है। उनकी युक्तियाँ और अनुभव भी विस्तृत है। ऐसे पुरुषके विचारोंको हम अपने पत्रमें स्थान न दें तो फिर और किसके विचारोंको स्थान दें? मुझे भय है कि आपने वह लेख शान्तिसे नहीं पढ़ा, यदि पढ़ा होता तो आपको मालूम होता कि—

"उन्होंने पुनर्विवाहको धर्मकार्य नहीं किन्तु पाप ही माना है; इतना ही नहीं, उन्होंने तो प्रथम विवाहको भी धर्म नहीं किन्तु व्यवहार माना है। वे अखंड–ब्रह्मचर्य्यको ही धर्म समझते हैं और अखंड-ब्रह्मचर्य्य पालनेवालोंको ही वे पवित्र, उच्चतमजैन और पूज्य ठहराते हैं। परन्तु जिनसे अखंड–ब्रह्मचर्य-पालन न हो सके उनके लिए समाजने विवाहकी व्यवस्था की है और उसे धर्म-विवाह ठहराया है। इस शुभ हेतुसे कि लोग स्वपत्नीसे भी केवल विषयसेवनके ही अभिप्रायसे संबंध न करें। प्रकृतिकी वास्तविक मंशा यह है कि स्त्री पुरुष संभोगके विषयमें मितव्ययी हों और उनमें शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य और बलकी वृद्धि हो। इस तरह मितसंभोगके द्वारा संतान भी बलिष्ठ होती है। परन्तु ऐसा उपदेश सुनकर लोग विषयसेवनमें मितव्ययी नहीं हो सकते, यह समझकर विवाहको धर्मविवाह ठहराना पड़ा, ताकि धर्मके डरसे लोग स्वस्त्रीसम्बन्धमें भी नियमित रहें और विषय वासनाओंको रोकें।

"इस तरह लेखकने ब्रह्मचर्यको ही धर्म माना है और विवाहको धर्म नहीं; किन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे माना हुआ धर्म ठहराया है। इतना ही नहीं परन्तु स्वस्त्रीसे भी नियमित रहनेका उपदेश दिया है।

"फिर जो लोग पहली और दूसरी कक्षाके नहीं हैं, अर्थात् तीसरी कक्षाके– कनिष्ठ आत्मबलवाले हैं–या यों कहिए कि जो एकबार विवाहित हो चुकनेपर विधवा या विधुरकी अवस्थामें नहीं रह सकते, उनके लिए क्या करना चाहिए? इस प्रश्नका उत्तर लेखक महाशय अनेक स्थितियोंका विचार करके भिन्न भिन्न स्थितिवाले स्त्री पुरुषोंके लिए भिन्न भिन्न रूपसे देते हैं। उनकी प्रथम और सर्वोत्तम सलाह तो यह है कि सुयोग्य पुरुष और सुयोग्य स्त्रीका ही विवाह हो, अयोग्य स्त्री-पुरुषको समाज विवाह करनेकी आज्ञा ही न दें; जिससे कि छोटी उमरमें विधवा होनेकी संभावना ही न रहे। यदि हजारमें कोई एक दो विधावायें हो जायँ, तो उनके लिए कोई खास कानून (विधवा-विवाहके समान) रखनेकी जरूरत नहीं है। उनका मत है कि जब बहुतसे स्त्री पुरुष पुख्त उमरमें और गृह-संसार चलानेकी योग्यता प्राप्त करके विवाह करेंगे तब विवाह ऐसा सुखमय हो जायगा कि स्त्रीको अपने प्यारे पतिकी मृत्युके बाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषकी शय्यापर जानेका विचार भी पसंद न आयगा। (इस बात परसे लेखककी शुभनिष्ठाका ख्याल आप कर सकेंगे) इसके सिवा उनका यह भी कहना है कि विधवाओंको केवल उदरपोषणके लिए ही पुनर्विवाहका आश्रय न लेना पड़े, इसके लिए समाजको चाहिए कि वह जगह जगह विधवाश्रम खोले और उनमें उनके उदरपोषणके सिवा उन्हें आत्मज्ञान देनेका प्रबंध भी किया जाय, जिससे वे उस ज्ञानके जोरसे अपने विकारोंपर जय प्राप्त कर सकें।

" अब यह देखना चाहिए कि लेखक महाशयने विवाहकी बकालत किस रूपसे की है। उन्होंने कहा है कि यदि हम लोग बालविवाह या वृद्ध विवाहको बंद न रख सकेंगे, तो बालविधवाओंकी संख्या बढ़ती ही जायगी और उनके उदरपोषणके लिए कुछ न कुछ विचार करना ही पड़ेगा। अतएव लेखककी राय है कि उनके लिए विधवाश्रम खोलकर उन्हें इन्द्रियनिग्रहकी शिक्षा दी जाय। पर जिन बहुत ही कम उम्रवाली स्त्रियोंसे इन्द्रियनिग्रह न हो सके, उन्हें समाज को चाहिए कि पुनर्विवाह की आज्ञा दे। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि यदि बालविधवायें न हों तो विधवा-विवाह की जरूरत ही न रह जाय। विधवाविवाह पसन्द न हो तो ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे बालविधवायें ही न होने पावें और ऐसा प्रबंध करना समाजके हाथमें है।

" एक ध्यान देने योग्य बात लेखक महाशय यह लिखते हैं कि मुझे यह बात पसंद नहीं है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी इच्छासे पुनर्विवाह करें। ऐसा करनेसे समाजमें अव्यवस्था हो जायगी। समाजको चाहिए कि जो स्त्री फिरसे विवाह करना चाहती है उसकी उम्र क्या है, स्थिति क्या है, उसकी विवाहित स्थिति कितने समयतक कायम रही थी इत्यादि बातोंका विचार करके फिर उसे पुनर्विवाह करनेकी इजाजत दे या उसका निषेध करे। तात्पर्य यह है कि समाजकी आज्ञाके सिवाय स्त्री-पुरुष खुदमुख्तारीसे पुनर्विवाह न करें। उनकी यह बात भी उनकी शुभनिष्ठाको प्रकट कर रही है।

"इस कथनका उद्देश्य क्या है सो भी ध्यानमें रखना चाहिए। उनका मत है कि, हम यदि समाजके कानून बहुत सख्त रक्खेंगे तो लोग इस धर्मको छोड़कर अपने सुभीतेवाले किसी अन्य धर्ममें चले जावेंगे। इस लिए यह उचित समझ पड़ता है कि पहली दूसरी और तीसरी इन तीनों श्रेणियोंमें समाजके सारे मनुष्योंका समावेश किया जाय। ब्रह्मचारियोंका दर्जा सबसे ऊँचा है। विवाहित स्त्रीपुरुषोंकी गणना दूसरे दर्जेमें की जा सकती है और जो पुनर्विवाह करते हैं वे तीसरे दर्जेमें हैं। क्या यह न्यायसंगत नहीं हैं ? ऐसा करनेसे उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीनों ही प्रकारके लोग जैन धर्मको पालन कर सकेंगे। यदि ऐसा न किया जायगा आपद्धर्मके रूपमें भी विधवाविवाहकी आज्ञा न दी जायगी तो बहुतसे स्त्रीपुरुष आर्यसमाजी या किश्चियन आदि बन जायँगे और बनते हैं।

" यहाँपर मैं आपको एक बात याद कराता हूँ कि हिन्दूधर्मवालोंने भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ऐसे चार दर्जे योग्यतानुसार रक्खे हैं और उत्तम ब्राह्मणसे कनिष्ठ शूद्रतक को हिन्दूधर्ममें स्थान दिया है। ऐसी व्यवस्था करनेसे जैनसंख्याकी कमी रुक जायगी। यदि आप कहेंगे कि क्या विधवाविवाह जैसे नीच काम करनेवालोंको हम जैनसमाजमें रक्खेंगे ? तो मैं पूछता हूँ कि क्या व्यभिचार, शराब खोरी, चोरी, दगाबाजी इत्यादि महानीच पाप जैनियोंमें कम होते है ? और ऐसे पाप करनेवाले क्या जैनसमाजसे बहिष्कृत किये जाते हैं ? क्या यह बात सच नहीं है कि सच्चे जैन तो हजारमें एक दो ही हैं? तथापि व्यव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हार रक्षाके लिए हमने यही ठहरा लिया है कि मनुष्य चाहे जैसी अनीतिका सेवन करे परन्तु वह जबतक अपने मुँहसे तीर्थंकरोंका नाम जपता रहे और 'जैनधर्म सच्चा है' ऐसा कहता रहे तबतक उसे जैनी ही कहना चाहिए। जब ऐसी धारणा है तब उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन तीन प्रकारके लोगोंके जैनधर्ममें स्थान देनेसे क्या हानि है?

" इन बातोंका विचार बहुत कुछ शान्तिके साथ करनेकी आवश्यकता है। और और सुधारकोंके समान हमारे लेखकने विषयसेवनको पुष्टि देने या अधर्म सेवनका पक्ष नहीं किया है। लेखक यह बतलाना चाहते हैं कि विधवाओंकी दशा सुधारनेके लिए समाजका संगठन फिर नये सिरेसे करना होगा, तथापि यदि आपको और दूसरे धर्मप्रेमी महाशयोंको उनकी किसी दलीलमें कोई दोष मालूम पड़े, तो उसकी निजी तौरसे या सामयिक पत्रों द्वारा चर्चा होनी चाहिए। इससे समाजको लाभ ही होगा।

"सेठजी, अंतमें मैं आपसे एक ही विनय करना चाहता हूँ और वह यह कि जब गत कई वर्षोंमें आपने या किसी जैनभाईने मेरे लेखोंमें, विचारोंमें या व्यवहारमें कोई दोष नहीं देखा तब क्या केवल एक ही लेखको स्थान देनेसे मैं अधर्मका हिमायती हो गया? जिन महाशयने यह लेख लिखा है वे जैनसमाजके एक प्रसिद्ध लेखक, विचारक और धर्मसेवक हैं, उन्होंने धर्मसेवाके लिए अनेक कष्ट सहे हैं, उनकी महात्मा तिलक, खापर्डे आदि देशभक्तोंने प्रशंसा की है। ऐसे पुरुषको भी एक विषयके एक लेखके लिए अधर्मी समझना मेरी दृष्टिसे तो साहस ही है। इस चर्चासे न उनका कोई निजी स्वार्थ है और न मेरा ही; तो भी मैं आपलोगों की दलीलें सुननेको सदैव तत्पर हूँ और आप की समाजसेवाकी जिज्ञासाको-जो कि आपकी चिट्ठीसे प्रत्यक्ष मालूम पड़ती है-देखकर आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारे समाजमें विचार सहिष्णुताका उदय हो और निजी रागद्वेष आदिसे दूर रहकर शुभनिष्ठा और समाजसेवाके आशयसे प्रत्येक विषयका भलीभाँति ऊहापोह होता रहे।"

१८ आचार-दिनकर और यज्ञोपवीत।

'यज्ञोपवीत और जैनधर्म' शीर्षक नोट (पृष्ठ २४२) में जिन साधु महोदयके पत्रका एक अंश उद्धृत किया गया है, उन्हींके दूसरे पत्रमें लिखा है-

" यहाँ पर मुझे 'आचार-दिनकर' मिल गया। देखनेसे मालूम हुआ कि ग्रन्थान्तमें, कर्ताने अपनी गच्छपरम्परा वगैरहका उल्लेख करनेवाली लम्बी प्रशस्ति लिखी है। इस प्रशास्तिमें यह भी लिखा है कि इस ग्रन्थकी रचना श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायके अनेक आचारविषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करके की गई है। इससे यह अनुमान-निश्चित-रूपसे-हो सकता है कि इसमें जो श्रावकोंको 'जनेऊ' पहननेका विधान बताया गया है वह किसी दिगम्बर ग्रन्थका ही अनुसरण है। क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदायमें एककी अपेक्षा अधिक ग्रन्थोंमें 'जनेऊ' पहननेका विधान है और श्वेताम्बरसम्प्रदायके-आचारदिनकरको छोड़कर एकमें भी नहीं।"

१९ 'दिगम्बरजैन' के लेखक।

उक्त साधु महोदय अपने इसी पत्रमें लिखते हैं-

" हितैषी और हितेच्छुमें जो पुनर्विवाहविषयक गंभीर और तात्त्विक विचार प्रकट किये जाते हैं उनके सम्बन्धमें सूरतके 'दिगम्बर जैन' के पिछले अंकमें एक महाशयके कुछ उद्गार मेरे पढ़नेमें आये, तो मुझे बड़ी हँसी आई। लेखक अपने विचारसे खण्डन तो करने चले हैं पुनर्विवाहका और सारे लेखमें श्लोक भर दिये हैं पतिव्रता सीता आदिके वृत्तान्तके। जो मनुष्य इस प्रकार पुराने ग्रन्थोंके श्लोकोंकी सेनाको, विना समझे ही विज्ञ विचारकोंके सामने लड़नेके लिए भेजता है उसे इतना तो विचारना चाहिए था कि शत्रु किस दिशामें खड़ा है और इन निर्जीव सिपाहियोंमें बन्दूक उठानेकी भी शक्ति है या नहीं। 'शत्रु आया' इतने शब्दोंको सुनकर ही, चाहे जिस दिशामें दौड़ पड़नेसे और आँख मीचकर जो हाथमें आया उसे उठाकर फेंक देनेसे ही जो शत्रु परास्त यदि हो सकता तो जर्मन शत्रुका पराजय करनेमें मित्रोंको इतना बिलम्ब न लगता। परन्तु इतनी विचारशक्ति यदि हमारे इन श्रुतज्ञानियोंमें होती तो ये इस जड़समाजमें कुछ न कुछ चैतन्यका संचार अवश्य करते।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जनरल आर्मस्ट्रॉंग ।

(ले०– पं० शिवसहाय चतुर्वेदी।)

संसारमें लोकसेवासे बढ़कर दूसरा कोई पुण्य-काय नहीं है। आज हम एक ऐसे महापुरुषकी जीवनी पाठकोंको भेट करते हैं कि जिसने दास्य-पंक और अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई एक काली अनार्यजातिके लिए अपार श्रम किया था, जिसने उनको दास्यपंकसे उद्धार करनेके लिए शस्त्र-धारण किया था और उन्हें सब तरहसे सुशिक्षित और स्वाबलम्बी बनानेमें अपना जीवनतक उत्सर्ग कर दिया था ! इस महात्माका पूरा नाम 'सेमुएल चेपमेन आर्मस्ट्रॉंग 'था। इनका जन्म जनवरी सन् १८३९ को हवाई–द्वीपमें हुआ था। इनके माता पिता धर्मोपदेशक (पादरी) थे। माता विदुषी थी इस लिए वह स्त्रियोंकी सहायता करती थी और पिता धर्मोपदेशक, अध्यापकी और डाक्टरी–इन तीनों कामोंको करते थे। माता पिताके लोकसेवा सम्बन्धी इन कामोंका पुत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हवाई-द्वीपमें यूरोपियन लड़कोंकी शिक्षाके लिए जो पाठशाला थी आर्मस्ट्रॉंगकी प्रारंभिक शिक्षा उसी जगह हुई थी । आर्मस्ट्रॉंग हवाई लोगोंपर हार्दिक प्रेम रखते थे। बहुत दिनोंतक उनके संसर्गमें रहकर उनकी धारणा हो गई थी कि–हवाईलोग दयालु और विश्वासी होते हैं, अतिथि और मेहमानोंका आदर-सत्कार प्रेमपूर्वक करते हैं; वे खेती आदि परिश्रमके काम बहुत उत्तमता और ईमानदारीके साथ करते हैं— चोरी कभी नहीं करते।

आर्मस्ट्रॉंगके हृदयमें उनके प्रति बड़ी सहानुभूति थी और वे उनको सब तरहसे सहायता देकर उनकी उन्नति करनेकी इच्छा रखते थे। वे जानते थे कि यद्यपि उन लोगोंकी सामाजिक अवस्था हीन है, परन्तु उनकी आत्मिक स्थिति हम लोगोंहीके समान है। यदि उनको सहायता दी जावे–उनकी उन्नतिका मार्ग उन्मुक्त कर दिया जाय तो वे बहुत शीघ्र उन्नत हो सकते हैं।

सन् १८६० ई० में कालेज छोड़नेपर आर्मस्ट्रॉंगने मिशनकी नौकरी करली। साथही उन्होंने हवाई-भाषामें 'ही-हवाई' नामका एक समाचार-पत्र निकाला। उसके द्वारा वे हवाई लोगोंकी सुधारणाका प्रयत्न करने लगे। कुछ समयके बाद वे इस कामको छोड़कर अमेरिका-संयुक्तराज्यके विलियम्सटाउन नगरमें गये और वहाँ डा० हाप्किन्स नामक तत्त्ववेत्ताके समीप रहकर अपने ज्ञानको परिमार्जित करने लगे। जिस समय वे वहाँ रहते थे उस समय बीच बीचमें उनकी इच्छा धर्मोपदेशक बननेकी होती थी, परन्तु उनकी वह इच्छ पूर्ण न हुई और उन्हें सन् १८६२ में लड़ाईके मैदानमें जाना पड़ा।

उस समय अमेरिका–संयुक्तराज्यमें दास्यप्रथा या गुलामगीरीके विषयमें बड़े जोरका आन्दोलन हो रहा था। इस स्थलपर पाठकोंको गुलामीके प्रारंभिक इतिहासकी कुछ बातें सुनाना उचित जान पड़ता है। लगभग चारसौ वर्ष पहले अमेरिका एक बीरान और जंगली देश था। सत्रहवीं शताब्दीके प्रारंभमें यूरोपीय लोगोंकी दृष्टि उस पर पड़ी और यूरोपसे भिन्न भिन्न देशोंके लोग जाकर वहाँ बसने लगे। वहाँ खेती आदिके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए खूब जगह पड़ी थी, पर वह जंगलमय थी और उसके साफ करनेके लिए बहुत परिश्रमकी जरूरत थी। अतएव इन यूरोपीय लोगोंको—जो वहाँ जाकर जमींदार बन गये थे—खेती आदिके कामोंके लिए मजदूरोंकी जरूरत हुई। इस कामके लिए आफ्रिकाके नीग्रो या हबशी लोग जहाजोंमें भर भरकर लाये जाने लगे। यह धँदा खूब चल पड़ा। व्यापारी लोग आफ्रिका जाकर वहाँसे बेचारे नीग्रो लोगोंको भेड़-बकरीके समान बलपूर्वक भर लाते थे और अमेरिका आकर उन्हें मनमानें दामोंपर बेचते थे। पहले यह रोजगार पोर्तुगीजोंके हाथमें था, पर पीछेसे अँगरेजोंके हाथमें आगया। यह दास्य-विक्रयका रोजगार दिनपर दिन बढ़ता ही गया और लगभग ढाईसौ वर्षोंतक जारी रहा। उस समय इन दासोंकी संख्या ४० लाखसे ऊपर हो गई थी। नीग्रोलोगोंपर उनके प्रभु या मालिक जो जो अत्याचार करते थे उनको सुनकर रोमांच हो आता है। वे बेचारे पशुओंके समान बाजारमें खड़े करके बेचे जाते थे, निर्दयतापूर्वक मारेपीटे और कभी कभी बध तक किये जाते थे! और उनकी स्त्रियोंपर पैशाचिक अत्याचार होते थे! कोई उनकी रक्षा करनेवाला न था। कहनेका तात्पर्य यह है कि न तो वे मनुष्य समझे जाते थे और न उसके प्राणोंका कोई मूल्य गिना जाता था। यह आसुरिक अत्याचार कैसा भयंकर होगा, इसका पाठक स्वतः अनुभव कर सकते हैं। इसी अमानुषिक अत्याचारको दूर करनेके लिए अमेरिकाके कुछ सहृदय सज्जनोंने उक्त आन्दोलन उठाया था।

उत्तर प्रांत निवासी गोरे तो नीग्रोलोगोंको दासत्वसे मुक्त कर देना चाहते थे पर दक्षिणप्रान्त निवासी इसके घोर विरोधी थे। यह विरोध यहाँ तक बढ़ा कि अंतमें उत्तर और दक्षिण प्रान्तोंमें परस्पर युद्धकी भेरी बजने लगी और दक्षिण-प्रांतनिवासी धनी लोगोंके चुंगलसे लगभग ४० लाख नीग्रोलोगोंको छुड़ानेके लिए युद्ध प्रारंभ हो गया। अंतमें उनका यह उद्देश सफल हुआ और पहली जनवरी सन् १८६३ को ढाईसौ वर्षोंकी गुलामीके बाद नीग्रोलोगोंको स्वाधीनता दे दी गई।

इस युद्धके समय अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट लिंकनको युद्धोपयोगी मनुष्योंकी बड़ी जरूरत थी, इस लिए उस समय हमारे चरितनायकने आगे बढ़कर नीग्रो लोगोंकी सहायतार्थ युद्धभूमि पर पैर रक्खा। कप्तान आर्मस्ट्रॉंगने इस कामको बड़े उत्साह और प्रेमके साथ किया—सुशिक्षित और धर्मवान् लोगोंको ऐसे ही कामोंसे प्रेम होता है। "नीग्रोलोग हमारे भाई हैं और उनको दासत्वसे छुड़ानेके लिए हम लड़ रहे हैं।" इस भावको हृदयमें रखकर वे अपने कर्तव्यपालनमें लगे हुए थे। वे कभी निराशा नहीं हुए। इस भावनाका उल्लेख उन्होंने अपने एक पत्रमें इस तरह किया है—

"मैं किस लिए लड़ रहा हूँ? कानूनके अनुसार नीग्रो लोग मुक्त हो चुके हैं, परन्तु दक्षिण प्रांतवाले इस कानूनको मान्य नहीं करते हैं। मैं दीन जनोंके लिए-उनकी स्वतंत्रताके लिए लड़ रहा हूँ। यदि मैं इस युद्धमें मारा जाऊँगा तो समझूँगा कि मेरे जीवनका उपयोग एक सत्कार्यके लिए हुआ। क्योंकि यह महायुद्ध पवित्र-तत्त्वके लिए हो रहा है। इस समय दक्षिणके लोगोंकी जगह जगह विजय हो रही है; परन्तु मुझे दृढ़ भरोसा है कि हमारी बाजू सत्यकी है, अतः अन्तमें हमें ही यश मिलेगा। जब मैं इन नीग्रो लोगोंकी ओर देखता हूँ, तब मुझे यही भावना होती है कि ये मनुष्य हैं—स्वाधीनताके अधिकारी हैं; इन्हें गुलामीमें रखनेका न किसीको अधिकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और न ये सदा इस हालतमें रह ही सकते हैं। मैं इस युद्धभूमिपर जो कुछ करता हूँ उसे ईश्वरीय आज्ञा-ईश्वरीय काम समझकर करता हूँ। मेरा दृढ़ निश्चय है कि अपने प्रयत्नमें किसी तरहकी न्यूनता न होने देकर उसे अंतिमसीमा तक पहुँचाऊँगा और जो कुछ संकट आपड़ेंगे उन्हें धीरतापूर्वक सहन करके अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहूँगा। युद्धभूमि पर अगणित कष्ट होते हैं, परन्तु मैं उन्हें कष्ट नहीं गिनता। नीग्रोलोगोंको दासत्वसे मुक्त करना-गुलामीसे छुड़ाना बहुत उत्तम और पुण्यकर्म है। इस समय वे हमारे साथ हमारे समान ही युद्धभूमि पर लड़ रहे हैं। उनके गुणोंको देखकर कौन कह सकता है कि वे गुलामीके योग्य हैं? मुझे उनके उद्धारके लिए लड़नेका मौका मिला इस कारण मैं अपनेको धन्य समझता हूँ। हम मनुष्योंकी मनुष्यताके लिए लड़ रहे हैं। आजके युद्धमें मेरी सेनाके दो नीग्रोभाई काम आये हैं और मैंने उनको सच्चे नागरिकोंके समान बड़े सन्मानसे मिट्टी दी है। जो पहले तुच्छ समझे जाते थे उनको आजमैं बराबरीके नागरिक मानता हूँ। उनको नागरिकों और सिपाहियोंका सन्मान देनेसे उनमें अच्छे अच्छे गुण प्रकट होंगे। इस युद्धके परिणाम पर४०लाख नीग्रो भाइयोंकी गुलामी या स्वाधीनता अवलंबित है, इस लिए मैं प्राणपनसे लड़ रहा हूँ और इस कामके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेको तैयार हूँ। परसोंकी बात है। नीग्रो लोग युद्धभूमिपर हमला करने जा रहे थे। उस समय शत्रु-सैन्यकी ओरसे गोलियोंकी मार पड़ रही थी, तो भी जब तक उन्हें सेनापतिकी आज्ञा नहीं मिली, तब तक वे रुके नहीं बराबर शत्रुकी ओर बढ़ते गये। न वे पीछे हटे और न किसी प्रकार भयभीत हुए। ये क्या उनके प्रशंसनीय गुण नहीं हैं? शाबास नीग्रोवीरो! तुम्हारे इस गुणको देखकर मुझे अतिशय आनंद होता है।"

उक्त पत्रको पढ़नेसे—जो उन्होंने युद्धक्षेत्रसे अपने घर भेजा था—कप्तान आर्मस्टाँगके उदार हृदयका पता लग जाता है।

कुछ दिनोंमें युद्धके समाप्त होनेका समय आगया। दक्षिण प्रान्तकी सेनाका नायक ९ अप्रैल सन् १८६३ को शरण आगया और इस तरह इस गृह-कलहके समाप्त होनेपर कप्तान आर्मस्टाँगको इस कामसे छुट्टी मिल गई। थोड़े ही दिनोंके बाद जब अमेरिकन सरकारने इनके युद्ध-कौशलको सुनकर इन्हें सेनाविभागमें उच्चपद देनेके लिए बुलाया तब आर्मस्टांगने सोचा अब क्या करना चाहिए? नौकरी करके सुख-शान्तिपूर्वक जीवन बिताना अच्छा है या रूखी-सूखी रोटी खाकर दीन, असहाय और अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए लोगोंके हितसाधनमें अपने जीवनको उत्सर्ग कर-देना। इस विषयमें उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा है।

"मैं सोच रहा था कि अब कौनसा काम करना चाहिए। मुझे जैसा मैं चाहता था वैसा ही काम मिल गया। इस देशमें दीनोंके उद्धारके लिए जो कार्य चल रहे हैं उनमें योग देना ही उचित समझ पड़ता है। लोकसेवाके लिए यदि मेरी बुद्धि और शक्ति काम आवे तो इससे बढ़कर अच्छा काम और क्या हो सकता है? जनसेवा ईश्वरसेवा ही है, और इस कामको न करना ईश्वरकी आज्ञाका उल्लंघन करना है-उसके प्रतिकूल चलना है। मैं जनसेवारूपी इस ईश्वरीय आज्ञाको पालन करना सर्वथा उचित और अपना कर्तव्य समझता हूँ। युद्धमें परमेश्वरकी कृपासे बचे हुए इस शरीरको किसी परोपकार या जनसेवाके काममें लगाना ही उचित है। कोरा धर्मोपदेशक होना मुझे पसंद नहीं है, क्योंकि उपदेशक होनेकी अपेक्षा किसी अच्छे काम-को करना लाख तरह अच्छा है।"

जिस समय मनुष्य विचार तरंगोंसे व्याकुल हो जाता है उस समय वह बहुधा कुछ निश्चय नहीं कर सकता; परन्तु कईबार ऐसा होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि जिस समय मनुष्यके मनमें क्रान्तिकारक विचार धूम मचाते हैं उस समय उसे एकाएक अपना अभीष्ट काम सूझ जाता है। हमारे चरितनायकको भी ऐसा ही हुआ। यह सच है कि ४० लाख नीग्रो कानूनके अनुसार दासत्वसे मुक्त होगये, परन्तु अब उन्हें क्या करना चाहिए? उनके भरण पोषण और रहनेके लिए क्या व्यवस्था करना चाहिए? इस समय राष्ट्रके साम्हने यही प्रश्न खड़ा था। पहलेके मालिकोंने अपने दासोंको सरकारके जिम्मेंकरके रसीद लेली। कुछ समय पहले जो दास सनाथ थे वे अब अनाथ हो गये–उन्हें कोई सहारा देनेवाला न रहा। स्वाधीनताप्राप्त नीग्रो लोगोंमेंसे अधिकांश दक्षिणप्रान्तोंहीमें रहते थे और वहाँके निवासी उन्हें किसी तरहकी सहायता नहीं देना चाहते थे। अंतको उत्तरप्रान्तवालोंका इस ओर ध्यान गया और उन्होंने इनके लिए योग्य सहायता देना शुरू कर दिया। सरकारने भी उनके लिए अन्न पानीका कुछ सुभीताकर दिया। इसके सिवा एक 'नीग्रो–हितेच्छु–मंडल' भी स्थापित किया गया। उसके सभासद उनकी हर तरहसे मदद करनेके लिए तैयार हो गये। कप्तान आर्मस्ट्राँगने यह सब देखकर और यह समझकर कि हमारे सोचे हुए सभी काम चालू होगये हैं–बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने उन सब कामोंमें तन मन धनसे योग देना प्रारंभ कर दिया। और इस तरह सन् १८६६ से १८९३ तक उन्होंने अपने आयुष्यकी २७ वर्षे एकनिष्ठासे नीग्रोलोगोंकी सेवामें व्यतीत कीं।

दूसरे और भी कई आदमी व्यक्तिशः या संस्थायें स्थापित करके इस कार्यमें लग गये थे, तो भी आर्मस्ट्रांगका भाव और उत्साह आलौकिक था–उसमें जरा भी शिथिलता न आई। वे भूख प्यास भूलकर एक पतितजातिके उद्धारमें लगे थे। उनको न तो अपने सुखोंका ख्याल था और न स्वार्थों का; केवल नीग्रोलोगोंका उद्धार, यह एक ही विचार–एक ही ध्येय–एक ही कामना उनके मनमें जागरित रहती थी।

दूसरोंको दासत्वके फंदसे छुड़ानेवाला स्वतः ही अपने बलवान् विचारोंका दास बनगया। क्या करना चाहिए? क्या करनेसे एक पतित जातिका उद्धार होगा–वे निरंतर इन्हीं विचारों-में रहा करते थे और जो युक्तियाँ उन्हें सूझ पड़-ती थीं उन्हींके अनुसार काम करनेमें लग जाते थे। उन कामोंको पूर्ण करनेके लिए वे पत्र लिखते थे, मित्रोंसे प्रार्थनायें करते थे, व्याख्यान देते थे, और समाचार पत्रोंमें लेख लिखते थे। इस तरह इस दीनवत्सल महापुरुषका सारा समय इसी परोप-कार चिन्तामें बीतता था। इस तरहके प्रयत्नोंसे नीग्रो लोगोंको खूब सहायता मिलने लगी; किसीने उनको घरपर नौकर रख लिया, किसीने खेतोंमें तनरव्वाहसे काम करनेके लिए नियुक्त किया और किसी किसीने उनको अपने कारखा-नोंमें रखकर उनको काम सिखाना शुरू कर दिया। इतना हो चुकने पर नीग्रो बालक बालि-काओंको पढ़ाने लिखानेकी व्यवस्था करनेका विचार हमारे चरितनायकके मनमें उत्पन्न हुआ और उसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी शुरू कर दिया। पढ़ लिखकर सुशिक्षित होना ही नीग्रोलो-गोंका सच्चा दास्यविमोचन या गुलामीसे छुट-कारा पाना था। परन्तु अभीतक इस बातकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया था। आर्मस्ट्राँ-गने नीग्रोबालक बलिकाओंकी शिक्षाके लिए अनेक लोगोंकी सहानुभूति सम्पादन की और उनमेंसे बहुतोंने उनको द्रव्यकी सहायता देनेका वचन भी दिया। पाठशालाके लिए स्थान और पढ़ानेके लिए योग्य विषयोंका चुनना, ये दो बा-तें ही महत्त्वकी थीं। इन दोनों बातों पर खूब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विचार करके उन्होंने स्वतः ही उनका निर्णय कर लिया। थोड़ा लिखना पढ़ना सिखलाना, स्वच्छता और आरोग्यताके नियमोंका ज्ञान कराना और लड़के लड़कियोंको अपने निर्वाहके योग्य जुदेजुदे काम धंदोंमें निपुण बना देना ही उनकी निर्द्धारित की हुई शिक्षाका उद्देश्य था। विषयोंकी योजना हो चुकनेपर पाठशालाके लिए स्थान चुननेका काम और बाकी रह गया।

पाठशालाके लिए वस्तीसे कुछ दूर स्वच्छ आरोग्यप्रद और मनोहर स्थान होना चाहिए। आर्मस्ट्रॉंग किसी ऐसे ही स्थानकी फिकरमें थे। प्रवासके समय उन्होंने हेम्पटन नदीके किनारे एक अत्यन्त मनोहर मैदान देखा और वह स्थान उन्हें पसंद आगया। उन्हें तत्काल ही यह भावना होने लगी कि मानो वह जगह हजारों विद्यार्थियोंकी शिक्षाभूमि है। इस भावी शिक्षाभूमिके मनोहर दर्शन करके उनका मन आनंदसे नाच उठा। उन्होंने उसी भूमिको अपनी तपोभूमि बनानेकी ठान कर काम करना शुरू कर दिया। एक मिशनरी संस्थाने १६० एकर जमीन खरीद दी, एक मित्रने ७००००) रुपया दिये और एक मिशनसे ३००००) रु. मिलनेका अभिवचन मिला। इतनी तैयारी हो चुकनेपर १ अक्टूबर सन् १८६७ को इमारत बननेका काम शुरू किया गया। एक ही काममें पूर्ण उद्योग करते रहनेके कारण लोकमत विरुद्ध रहनेपर भी आर्मस्ट्रॉंगको यश मिले विना नहीं रहा। केवल इतना ही नहीं वरन् आगेके लिए उनका मार्ग भी प्रशस्त होगया।

हेम्पटन एक मनोहर स्थान है। वह उत्तर और दक्षिणप्रान्तोंके मध्यमें है। इस स्थानका ऐतिहासिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। यूरोपियन लोगोंकी पहली आबादी इसी स्थानके समीप हुई थी। पहले नीग्रो लोग जब दास बनाकर लाये गये थे तब वे भी इसी जगह उतारे गये थे। सिविल-वारमें सरकारी सेनापति जनरल ग्रॉंटकी मुख्य छावनी इसी जगह थी और इसी जगहपर जनरल बटलरने नीग्रो लोगोंके दास्यविमोचनकी घोषणा की थी। इस पुण्यक्षेत्रमें आर्मस्ट्रॉंगने अपने विद्यालयको स्थापित करके मानो उसे तीर्थराज बना दिया। हेम्पटन-विद्यालयमें नीग्रो बालक बालिकाओंकी शिक्षाके लिए जो योजना की थी, उसके विषयमें आर्मस्ट्रॉंगने एक जगह लिखा है—

नीग्रो बालक बालिकाओंको धंदा सिखानेका परिणाम अच्छा होगा, इससे वे बहुत बुद्धिमान् और तीक्ष्ण बुद्धि होंगे। स्वावलम्बनका महत्त्व समझ जाने पर 'यह काम हलका है—यह हमारे करने योग्य नहीं है।' इत्यादि बातोंको वे भूल जावेंगे। सुशिक्षासे उनको नियमितरूपसे काम करनेकी आदत पड़ जावेगी। जो विद्यार्थी उच्चशिक्षा प्राप्त करेंगे वे पढ़लिखकर शिक्षक या उपदेशक बनकर जातिउद्धारके के लिए कटिबद्ध होंगे। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि नीग्रोबालक शिक्षा पाकर उद्योगी, सुशील और कामकाजमें चतुर निकलेंगे।"

सरकारीतौरसे भी नीग्रोलोगोंको शिक्षा देनेके लिए प्रयत्न चल रहा था। इस कामकी व्यवस्था करनेके लिए महात्मा आर्मस्ट्रॉंग ही चुने गये और उन्हें 'जनरल' की उपाधि प्रदान की गई। आपने इस कामको बहुत सुन्दर रीतिसे चलाया परंतु आपके मनमें सदैव यह बात जागरित रहा करती थी कि कब हेम्पटन विद्यालय बनेगा और कब मैं नीग्रो बालकोंको शिक्षा दूँगा। पढ़ाने लिखानेके कामको वे बहुत पसंद करते थे। अतएव हेम्पटन-विद्यालयका भवन तैयार हो जाने पर उन्होंने और सब कामोंको छोड़ कर केवल उसीकी ओर चित्त लगाया। सन् १८६८ की पहली अप्रैलके शुभ मुहूर्तमें विद्यालय खोला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया। इस शुभ अवसर पर आर्मस्ट्राँगके गुरु भी उपस्थित थे। पहले पहल विद्यालय बहुत छोटे स्कीम पर खोला गया था—पहले दिन विद्यार्थियोंकी संख्या केवल १५ थी। विद्यार्थियोंको सबेरे हाथके काम करनेकी और दो पहरको पढ़ने लिखनेकी शिक्षा दी जाती थी। न तो विद्यार्थियोंसे फीस ली जाती थी और न अध्यापकोंको वेतन दिया जाता था। इस तरह पाठशालाका काम चलने लगा। धीरे धीरे विद्यार्थियोंकी संख्या जैसे जैसे बढ़ती गई, मित्रोंकी सहायता और एकत्रित हुए द्रव्यसे वैसे वैसे अध्यापक भी बढ़ाये जाने लगे। जनरल आर्मस्ट्रांगके कुछ मित्रोंने उनसे वेतन लेनेके लिए अनुरोध किया था। इस विषयमें उन्होंने एक जगह लिखा है:—

"मेरे मित्र मुझे वेतन लेनेके लिए कहते हैं; परन्तु निरपेक्ष काम करना ही अच्छा और श्रेयस्कर होता है। युद्धके समय शत्रुसैन्यके अधिकारी बिना तनरव्वाह लिए लड़ते थे; तब क्या मैं विद्यादानके कामको बिना वेतन लिए नहीं कर सकूँगा? यह मेरा व्रत है, इस व्रतको मैं बिलकुल निरपेक्षतासे करता रहूँगा"।

हेम्पटन विद्यालयके लिए जब जब नये मकान बनवानेका अवसर आता था या जब जब किसी दूसरे कामके लिए मजदूर लगाये जाते थे तब तब जनरल आर्मस्ट्राँग आधे यूरोपियन और आधे नीग्रो लोगोंको कामपर लगाते थे और जातिविषयक भेदभावको भूलकर सबको समान वेतन देते थे। जनरल आर्मस्ट्राँगने सन् १८६९ में एमा वॉकर नामक एक महिलासे पाणिग्रहण किया। इस महिलाके विचार बहुत ही उदार थे। उसे निष्काम कर्मोंसे बहुत प्रेम था। अब एककी जगह दो कार्य-कर्त्ता हो गये। श्रीमती एमा और आर्मस्ट्राँग दोनोंके परिश्रमसे हेम्पटन-संस्थाका काम बहुत अच्छी तरहसे चलने लगा।

सत्कार्योंमें विरोध हुआ ही करता है, स्वार्थ का मोह अपना जाल फैलाता ही है, माया मोहकरूप धारण करके साम्हने आतीही है और इसी तरह न जाने क्या क्या विघ्न आया करते हैं। ऐसा ही यहाँ हुआ। अनरल आर्मस्ट्राँगको उनके कई मित्रोंने अमेरिका-काँग्रेसके सभासद् होने और उसके द्वारा कीर्ति सम्पादन करनेकी सलाह दी थी; परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार की और गरीब शिक्षक रहने और केवल शिक्षकका ही काम करनेकी इच्छा प्रगट की। कई लोग उनके इस कामको पसंद नहीं करते थे; वे पूर्वकी भाँति सदैव काले-गोरोंमें भेदभाव रखना चाहते थे। इस कारण दक्षिणके वर्जिनिया स्टेटकी ओरसे विद्यालयके रजिस्टर्ड करानेमें अड़चन उपस्थित की गई। सभासदोंके मनमें पुराना क्रोध तो था ही, वे अनेक विघ्न खड़े करने लगे। वे गोरे बालकोंको पाठशालामें लेनेसे रोकने लगे। जनरल आर्मस्ट्राँग कहते थे कि यद्यपि पाठशाला काले लड़कोंके लिए है; परन्तु गोरे लड़कोंके आने पर मैं उनके साथ सबको समान शिक्षा देनेका पक्षपाती हूँ। ऐसा होना अर्थात् भेदभावको मिटाना काले-गोरे दोनोंको लाभकारी है। अंतमें कर्मवीर आर्मस्ट्राँगको सफलता प्राप्त हुई और ४ जून सन् १९७० को पाठशाला रजिस्टर्ड होगई। इस तरह पाठशालाका काम फिर निर्विघ्न रीतिसे चलने लगा।

सन् १८७० से १८९० ई० तक २० वर्ष पर्यंत जनरल आर्मस्ट्राँगने हेम्पटन-संस्थाकी उन्नतिके लिए अविश्रान्त परिश्रम किया। 'मनुष्य जातिका उपकार करना ही परम पुण्यकार्य है और इसीसे ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त होती है'। इस भावनासे उन्होंने लगातार काम किया। नीग्रो लोगोंको सब तरहसे उन्नत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देकर उनमें स्वाभिमान जाग्रत किया, उनके आज्ञानान्धकारको दूर करके उनमें विद्याभिरुचि उत्पन्नकी, गुलामीके भावोंसे भरे हुए उनके दिलोंमें स्वाधीनताका जोश डाला, पाठशालाको उन्नत करने, सुन्दर इमारतें बनाने और शिक्षाको फलवती बनानेके लिए उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया। वे बारह बारह घंटे तक संस्थाका काम किया करते थे। आर्मस्ट्रॉंगका मत था कि लड़के लड़कियोंके साथ पढ़नेसे दोनोंके विचारोंमें गंभीरता और आचारोंमें सभ्यता आती है; अतएव उनके विद्यालयमें लड़के लड़कियाँ दोनों साथ पढ़ा करती थीं। वे अपने विद्यार्थियोंको शिक्षा दिया करते थे कि जिसको जो काम आता हो और जो जिस कामको अच्छी तरह कर सकता हो, वह उसे ही करे और सदा उद्योगशील रहे। जो सीखना जानता हो वह अच्छी तरह सीखे, जो सिखाना जानता हो वह अच्छी तरह सिखावे। जिसे बढ़ईके काममें रुचि हो वह बढ़ईका काम करे और जिसे जूतोंपर पालिश करना आता हो वह पालिश करे। जनरल आर्मस्ट्रॉंग ऐसे ही सत्कर्मोंके ध्येय विद्यार्थियोंके सन्मुख उपस्थित किया करते थे। वे कहते थे कि नीग्रो मनुष्य हैं; यद्यपि वे सदोष हैं, अशिक्षित हैं, परन्तु उनमें दोषोंके दूर करने, शिक्षित और सुसभ्य होने की योग्यता भी है। वे लड़कोंको धर्म और नीतिकी शिक्षा देकर उन्हें धर्मात्मा और सदाचारी बनानेका सदैव प्रयत्न किया करते थे। उनमें उत्साह लानेके लिए कभी कभी वे कहानियाँ भी सुनाया करते थे। उनकी एक कहानी नीचे लिखी जाती है:—

" विद्यार्थियो, एक बिल्ली थी, उसे अभीतक झाड़पर चढ़ना नहीं आता था। एकवार उसके पीछे कुत्ता लगा, तब वह भागते भागते पेड़के समीप जा पहुँची। उसने सोचा कि झाड़पर चढ़नेके सिवा रक्षाका और कोई उपाय नहीं है। चढ़ना तो आता नहीं है पर अब तो किसी तरह चढ़ना ही होगा, नहीं तो बस मरी। अब चढ़ना ही होगा, ऐसा सोचकर वह झाड़पर चढ़नेका प्रयत्न करने लगी और चढ़ गई। विद्यार्थियो! तुम्हें भी सदैव ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए।"

महात्मा आर्मस्ट्रॉंग सच्चे कर्मवीर थे। वे एक बड़ी संस्थाको बड़ी ही उत्तम रीतिसे चलाते थे। इससे कोई यह न समझे कि उस संस्थाके लिए उनके पास कोई खजाना भरा पड़ा था, या कोई उन्हें घर बैठे द्रव्य दे जाता। नहीं, संस्थाके खर्चके लिए उन्हें प्रवास करना पडता था, गाँव. गाँव नगरों—नगरों भटकना पड़ता था, व्याख्यान देना पड़ते थे, लोगोंको अपना उद्देश समझाना पड़ता था और समाचार पत्रोंमें लेख लिखना पड़ते थे। आप स्वतः समझ सकते हैं कि किसी आश्रम या संस्थाके लिए पैसे इकट्ठे करना कोई सहज काम नहीं है—उसके लिए बड़ी सरगर्मी, अपार बुद्धिमत्ता, सच्चरित्रता और चतुराईकी आवश्यकता है। उन्होंने १२ वर्षोंमें संस्थाके लिए १८ इमारतें बनवाई और बहुतसा शिक्षणोपयोगी सामान खरीदा। इन सब कामोंके लिए उन्होंने इसी तरह पैसा एकत्रित किया था। इस तरहके अपार और अविश्रान्त परिश्रम द्वारा उन्होंने नीग्रोलोगोंमें योग्यता बढ़ाई और उनको हीनावस्थासे खींच कर उन्नत अवस्थाके मार्गपर आरूढ़ कर दिया।

जनरल आर्मस्ट्रॉंगको इस काममें सफलता मिलते देखकर और भी कई लोगोंने उनका अनुकरण किया। हेम्पटन विद्यालय एक प्रकारकी प्रयोगशाला या अनुभव प्राप्त करनेकी जगह थी। इसमें शिक्षा पाकर और काम सीखकर और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और लोगोंने भी कई विद्यालय खोले। इस काममें सबसे अधिक सफलता बुकर टी. वाशिंगटन नामक उनके एक नीग्रो-शिष्यको हुई। उन्होंने टस्केजीमें एक नीग्रो-संस्था खोलकर अपनी जातिका जो कल्याण किया, उसकी शतमुखसे भी प्रशंसा नहीं की जा सकती है। बुकर टी. वाशिंगटनकी टस्केजी-संस्थाको देख कर उन्हें बहुत संतोष होता था। सन् १८८७ और १८८९ इन दोनों वर्षोंमें दो विश्वविद्यालयोंने इन्हें एल. एल. डी. की बहुत ही बड़ी और सन्मानसूचक पदवी दी थी।

आर्मस्ट्राँगका मत था कि नीग्रो लोगोंके लिए राजकीय अधिकार प्राप्त करा देनेकी अपेक्षा उनमें ज्ञान फैलानेकी जियादा जरूरत है। वे जैसे जैसे सुशिक्षित होते जायँगे उनको वैसे वैसे अधिकार भी मिलते जायँगे। आखिर ऐसा ही हुआ। नीग्रोलोग लुजियाना प्रान्तमें बड़े बड़े ओहदोंपर नियुक्त होकर गोरे और काले लोगों पर समान रूपसे शासन करने लगे।

महात्मा आर्मस्ट्राँगने जीवन भर लोकसेवाका काम किया। वे सदैव एक समान परिश्रम किया करते थे। विश्राम क्या वस्तु है इसे वे जानते ही न थे। इस तरह अविश्रान्त परिश्रम करनेसे उनका शरीर क्षीण हो गया। वे मरनेके पहले सन् १८९३ ई. में अपने प्रिय शिष्य बुकर टी. वाशिंगटनकी 'टस्केजी-संस्था' देख आये थे। उन्होंने उस समय कहा था कि बस अब हमारा काम हो चुका अब हम सुखके साथ चिरशान्ति-लाभ कर सकेंगे। उसी वर्ष इस महात्माका स्वर्गवास हो गया।

आर्मस्ट्राँग लोकसेवा और परोपकारकी जीती जागती मूर्ति थे। उनका चरित प्रत्येक धर्मसेवक और देशसेवकके लिए अनुकरणीय है। प्रत्येक देश और प्रत्येक जातिमें ऐसे महापुरुषोंके जन्म लेनेकी आवश्यकता है। हमारे भारतमें तो इस समय एक नहीं सैकड़ों आर्मस्ट्राँगोंकी जरूरत है। अमेरिकामें तो केवल ४० लाख नीग्रोलोगोंके उद्धारका कार्य था; परन्तु इस देशमें नीग्रो लोगोंके ही समान तुच्छ दृष्टिसे देखे जानेवाले कई करोड़ अस्पृश्य या अछूत जातिके लोग हैं जिन्हें हस्तावलम्बन देकर ऊपर उठानेका बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है।

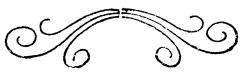

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजका ग्रन्थप्रकाशनकार्य ।

आत्मानन्द-ग्रन्थरत्नमाला ।

किसी भी धर्मकी रक्षा और प्रसारके लिए यह आवश्यक है कि उस धर्मका साहित्य—ग्रन्थभण्डार प्रकाशित किया जाय और इतना सुलभ कर दिया जाय कि केवल उस धर्मके पालनेवालोंको ही नहीं; किन्तु इतर जिज्ञासुओंको भी वह विना कष्टके प्राप्त हो सके । जबसे मुद्रणकलाका—छापेकी कलाका आविष्कार हुआ है, तबसे ग्रन्थ-प्रसारका काम बहुत ही सहज—आश्चर्यजनक सुगम —हो गया है । इसकी कृपासे बड़ेसे बड़े ग्रन्थकी लाखों प्रतियाँ कुछ ही दिनोंमें या महीनोंमें तैयार हो सकती हैं, जब कि पहले एक ग्रन्थकी एक ही प्रति करानेमें महीनों लग जाते थे । यह छापेकी ही कृपाका फल है जो ईसाइयोंकी धर्मपुस्तक बायबिलकी करोड़ों प्रतियाँ—शताधिक भाषाओंमें छप कर प्रतिवर्ष बिकती हैं और आज दुनियामें ईसाई धर्मके स्वरूपको समझनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है ।

यूरोपकी देखादेखी हमारे देशवासियोंका ध्यान भी छापेकी कलसे लाभ उठानेकी ओर गया; परन्तु जिस तरह और सब सुधारोंको हमने विना विरोध किये ग्रहण नहीं किया, उसी तरह इसको भी नहीं किया । भारतमें जितने धर्म हैं, उन सब ही धर्मके अनुयायियोंने शुरूशुरूमें अपने धर्मग्रन्थोंके छपानेका विरोध किया । यहाँका शायद ही कोई धर्म या सम्प्रदाय होगा, जिसने इसका विरोध न किया हो; परन्तु इसकी आश्चर्यजनक सुविधाओंके आगे सभीको सिर झुकाना पड़ा—किसीने कुछ वर्ष आगे और किसीने पीछे—इसे स्वीकार कर ही लिया ।

औरोंके समान जैनधर्मके अनुयायियोंने भी इसका विरोध किया और खूब किया । पर छापेका प्रबल प्रवाह रुका नहीं —पक्केसे पक्के धर्मात्माओंकी भी कट्टरता उसके पूरमें बह गई । जहाँतक हम जानते हैं, सबसे पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंका ही छपना शुरू हुआ । दिगम्बरियोंमें इसकी चर्चा बहुत पीछे हुई । जिस समय दिगम्बरों के १०—२० ही ग्रन्थ छपे थे उस समय श्वेताम्बरसम्प्रदायका विरोध प्रायः शान्त हो चुका था । इसी कारण इस विषयमें श्वेताम्बरोंकी अपेक्षा दिगम्बर समाज बहुत पीछे है । यद्यपि दिगम्बर समाजमें भी छापेका विरोध निर्जीव हो चुका है—यहाँ तक कि मालवा जैसा कट्टर शुद्धाम्नायी प्रान्त भी छापेका अनुमोदक हो गया है, तो भी अभी इस विरोधका सर्वथा निर्मूलन करनेमें दिगम्बर सम्प्रदायको दो चार वर्ष और भी लग जाँयगे ।

परन्तु अब विरोधी लोग बहुत ही थोड़े रह गये हैं और जो हैं वे समाजके हानिलाभकी बहुत ही कम परवा करनेवाले अथवा 'संसारमें क्या हो रहा है' इससे एकदम अज्ञान रहने-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले हैं। तब इनकी परवा न करके कहा जा सकता है कि दिगम्बरसमाजमें छापेकी जीत हो चुकी है–उसकी उपयोगिताको प्रायः सभीने स्वीकार कर लिया है। तो भी दिगम्बरसमाजमें ग्रन्थ–प्रकाशनका काम जितना होना चाहिए उतना नहीं हो रहा है–बहुत ही कम हो रहा है। और संस्कृत, प्राकृतके ग्रन्थोंके उद्धारके लिए तो अभी तक हमने कुछ भी नहीं किया है। ऐसी संस्था तो हमारे यहाँ एक भी नहीं है जो अनवरत रूपसे बिना किसी प्रकारके कष्टके इस कामको करती हो। पाठकोंको आगे चलकर मालूम होगा कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ऐसी अनेक संस्थायें हैं जो संस्कृत, प्राकृतके कई सौ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी हैं।

इसका कारण क्या है? क्या दिगम्बर–सम्प्रदायके लोग कंजूस हैं? अपने श्वेताम्बर भाइयोंकी अपेक्षा क्या वे धार्मिक कार्योंमें कम पैसा खर्च करते हैं? नहीं, इस विषयमें वे अपने भाइयोंकी अपेक्षा अधिक नहीं तो कम उदार भी नहीं हैं। इस बातको हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि यदि दोनों संम्प्रदायोंके धार्मिक खर्चका जोड़ लगाया जायगा, तो वह प्राय बराबर ही निकलेगा। परन्तु खर्चके मार्ग दोनोंके भिन्न भिन्न हैं। दिगम्बरसमाजका सबसे अधिक रुपया मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा करवानेमें खर्च होता है। ऐसा कोई वर्ष नहीं जाता है जिसमें कमसे कम पचास मन्दिर न बनते हों और बीस पच्चीस प्रतिष्ठायें न होती हों! अभी थोड़े दिन पहले जबलपुरके पास एक रथप्रतिष्ठा हुई थी। कहते हैं कि प्रतिष्ठा करानेवालेने अपनी प्रायः सबकी सब पूँजी लगा दी–मुश्किलसे हजार दो हजारकी पूँजी उसके पास शेष रही होगी! ऐसे कई धर्मात्मा हमने स्वयं देखे हैं जिन्होंने अपनी चार पाँच हजारकी पूँजीमेंसे दो तीन हजार रुपया लगाकर मन्दिर बनवानेका पुण्य लूट लिया! बुन्देलखण्ड प्रान्तने तो इस विषयमें सबका नम्बर ले लिया है। यदि वहाँके तमाम मन्दिरोंमेंकी जिन–प्रतिमाओंकी गणनाकी जाय, तो वह जैनोंकी संख्याकी अपेक्षा अधिक ही निकलेगी, कम नहीं! सोनागिर तीर्थपर मन्दिरोंके मारे जगह नहीं है–सारा पर्वत मन्दिरोंसे ढक गया है, तो भी किसी धर्मात्माने अभी हाल ही वहाँ एक और मन्दिर बनवानेका शुभ संकल्प किया है! परन्तु श्वेताम्बर-समाजमें यह बात नहीं है। मन्दिर और प्रतिष्ठाओंका रिवाज इस समाजमें बहुत ही कम है। यही कारण है कि उनके पास पुस्तकोद्धार जैसे अच्छे कार्योंमें खर्च करनेके लिए धन रह जाता है, परन्तु हमारे समाजके पास ईंट पत्थर चूना और लड्डुओंमें खर्च होकर इतना थोड़ा धर्मार्थधन रह जाता है कि उससे पुस्तकोद्धारका कार्य जैसा चलना चाहिए वैसा नहीं चल सकता।

दिगम्बरसम्प्रदायका अभी तक जितना साहित्य प्रकाशित हुआ है उसका अधिकांश उन लोगोंके द्वारा हुआ है जो इस कार्यको व्यवसायकी दृष्टिसे करते हैं; परन्तु इस ओर गहरी दृष्टि डालनेसे मलूम होता है कि व्यवसायियोंके द्वारा जैनसाहित्यका उद्धार होना असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। जैनसाहित्यका आधिक भाग संस्कृत और प्राकृत भाषामें है और इन दोनों भाषाओंके जाननेवाले हमारे यहाँ इतने कम हैं कि उनके लिए ग्रन्थ छपवाकर कोई भी–व्यवसायी लाभ नहीं उठा सकता! अतः जब तक ऐसी संस्थायें न खोली जायँगी, जो केवल ग्रन्थोद्धारकी दृष्टिसे इस कामको करें तब तक जैनसाहित्यका उद्धार नहीं हो सकता, यह निश्चय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हर्षका विषय है कि हमारे श्वेताम्बरी भाइयोंने इस बातको समझ लिया है और उन्होंने अभी अभी ऐसी कई संस्थायें स्थापित कर डाली हैं। बम्बईके 'सेठ देवचन्द लालचन्द-पुस्तकोद्धार भण्डार' का परिचय हम पहले कई बार दे चुके हैं जिसमें एक लाख रुपयेसे अधिककी पूँजी है और जिसके द्वारा अभी तक कोई ३२-३३ ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं। आज हम एक और ऐसी ही श्वेताम्बर संस्थाका परिचय देना चाहते हैं जो अपने ढंगकी एक ही है और जिसने थोड़े ही समयमें आशासे अधिक काम करके दिखलाया है।

इस संस्थाका नाम, 'आत्मानन्द जैन सभा' है। सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु स्वर्गीय आत्मानन्दजीकी स्मृतिमें लगभग १३-१४ वर्ष पहले भावनगरमें इसकी स्थापना हुई थी। इसके मंत्री श्रीयुत सेठ वल्लभदास त्रिभुवनदासजी गाँधी हैं। सभाकी ओरसे आत्मानन्द नामका एक मासिकपत्र भी निकलता है। भावनगरमें एक और संस्था है जिसका नाम, जैनधर्मप्रसारक सभा है। यह सभा बहुत पुरानी है और जैनग्रन्थोद्धारके कार्यमें उसने सबसे अधिक कार्य किया है। वह अब तक सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है। उसीका अनुसरण करके आत्मानन्दजैनसभाने भी दो तीन वर्षसे जैनग्रन्थोंके छपानेका काम शुरू कर दिया है और इस कार्यमें उसने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की है।

अब तक इस सभाकी ओरसे कोई ५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जो संस्कृत और मागधी भाषामें मूल या संस्कृतटीका सहित हैं। इनके सिवा सभाके मुखपत्र आत्मानन्द प्रकाशके पौषके अंकमें जिन छपे हुए ग्रन्थोंकी सूची दी है उनकी संख्या ३४ है। छपे हुए ग्रन्थोंमेंसे सभाके उत्साही मंत्री महाशयने नीचे लिए २९ ग्रन्थ हमारे पास समालोचनाके लिए भेजनेकी कृपा है जिन्हें हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं:—

१ **पंचसूत्र**—आचार्य हरिभद्रकृतव्याख्यासहित। पत्रसंख्या २९। इसकी व्याख्या विक्रमकी छठी शताब्दीकी लिखी हुई है। मूल ग्रन्थ इससे भी पहलेका होना चाहिए।

२ **धर्मरत्नप्रकरण**—श्रीशान्तिसूरिकृत। पत्र ८४। यह विक्रमसंवत् ११६१ का रचा हुआ है।

३ **देववन्दन-गुरुवन्दन-प्रत्याख्यान**—देवेन्द्रसूरिकृत मूल और सोमसुन्दरकृत टीका सहित। प० ७०।

४ **सिद्धपंचाशिका**—देवेन्द्रसूरिकृत। प० १४।

५ **विचारसंततिका**—महेन्द्रसूरिकृत। पत्र १७। उक्त तीनों ग्रन्थ विक्रमकी १३ वीं सदीके हैं।

६ **कुमारपालप्रबन्ध**— पत्र १२० और

७ **श्राद्धगुणविवरण**—पत्र ८४। श्रीजिनमण्डनगणिकृत।

८ **श्रावकव्रतभंगप्रकरण**—पत्र ८।

९ **समयसारप्रकरण**—देवनन्दाचार्य कृत स्वोपज्ञटीकायुक्त। प० ४४।

१० **धन्यकथानक**—दयावर्द्धनकृत। पत्र ९।

११ **सम्यक्त्वकौमुदी**—जिनहर्षगणिकृत। पत्र ९०।

१२ **रत्नपालनृपकथा**—सोममण्डनगणिकृत। पत्र ३२।

१३ **गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिका**—रत्नशेखरसूरिकृत। प० ९०।

ये नौ ग्रन्थ विक्रमकी १६ वीं शताब्दिके बने हुए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ **उपदेशसप्तति**—सोमधर्मगणिकृत पत्र १०२। इसकी रचना वि० संवत्, १५०३ में हुई है।

१५ **विचारपंचाशिका**— पत्र १० और १६ **बन्धषट्त्रिंशिकासावचूरि**—पत्र १०। वानरर्षिकृत।

१७ **ज्ञानसारसूत्र**—यशोविजयकृत मूल और देवचन्द्रकृत टीका सहित। पत्र ११०।

१८ **प्रतिमाशतक**—यशोविजयकृत मूल और भावप्रभसूरिकृत टीका सहित। प० ४५।

१९ **सूक्तिरत्नावली**—विजयसेनसूरिकृत। पृष्ठ ४८।

२० **महादण्डकस्तोत्र**—समयसुन्दरकृत। पत्र १२। ये छह ग्रन्थ विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दिके बने हुए हैं।

२१ **मेघदूतसमस्यालेखः**— मेघविजय कृत। पृष्ठ २८।

२२ **चम्पकमालाकथा**—भावविजयगणिकृत। पत्र ३०। ये दो ग्रन्थ अठारहवीं शताब्दिके हैं।

२३ **धम्मिल्ल कथा**। पत्र ७।

२४ **चतुर्विंशतिजिनस्तुतिसंग्रह**—शीलरत्नसूरिकृत। प० १२।

२५ **चेतोदूत**। पृष्ठसंख्या ३०।

२६ **परमाणुखण्ड–पुद्गल–निगोदषट्त्रिंशिका**—रत्नसिंहसूरिकृत वृत्तिसहित। पत्र२२।

२७ **रोहिणी-अशोकचन्द्र कथा**—कनककुशल कृत। प० १६।

२८ **पर्युषणपर्वाष्टाह्निकाव्याख्यान**—विजयलक्ष्मीसूरि। प० १२।

२९ **अज्ञाय उंछकुलक**—आनन्दविजयकृत। प० १०। पिछले नौ ग्रन्थोंका समय आदि अज्ञात है।

दो चारको छोड़ कर प्रायः सभी ग्रन्थ बम्बईके निर्णयसागर प्रेसमें, बढ़िया और बहुमूल्य मजबूत कागज पर, खुले पत्रोंमें सुपररायल बारह पेजी साइजमेंछपे हुए हैं। प्रायः प्रत्येक ही ग्रन्थके प्रारंभमें ग्रन्थकर्ताका परिचय या रचनाका समय आदि दिया गया है। सम्पादन और संशोधन योग्यतापूर्वक हुआ है। इस विषयमें सबसे अधिक उल्लेख योग्य बात यह है कि प्रायः सब ही ग्रन्थ चार चार पाँच पाँच प्रतियोंकी सहायतासे संशोधन किये गये हैं। किसी किसी ग्रन्थकी तो सात सात प्रतियाँ संग्रह करके सम्पादन किया गया है! इसका कारण यह है कि श्वेतम्बरसम्प्रदायके प्राचीन पुस्तक-भण्डार पुस्तक-प्रकाशक-संस्थाओंके लिए प्रायः मुक्तद्वार रहते हैं। पर हमारे यहाँकी दशा इससे ठीक उलटी है। हम लोगोंको एक एक प्रतिका प्राप्त करना भी बहुत कठिन है। डिपाजिट रुपया रखने पर भी ग्रन्थ नहीं मिलते। हमारे आराके सिद्धान्तभवनकी तो—जिसकी कीर्ति-दिग्विदिग्व्यापी हो रही है—अभीतक सूची ही तैयार नहीं हुई है, फिर उससे ग्रन्थोंकी सहायता ली जाय तो कैसे!

इस ग्रन्थमालाकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका कोई भी ग्रन्थ विक्री करनेकी इच्छासे नहीं छपाया जाता। इनका सबसे अधिक भाग साधु और साध्वियोंको दान किया जाता है। सभाके लाइफ-मेम्बरोंको एक एक प्रति मुफ्त दी जाती है। दूसरे विद्वानों और योग्य पुरुषोंको भी ये ग्रन्थ बिना मूल्य दिये जाते हैं। कुछ ऐसे जैनपुस्तकालय और जैनमन्दिरोंके भण्डार भी हैं जहाँ प्रत्येक ग्रन्थकी एक एक प्रति दानस्वरूप भेज दी जाती है।

सभाके पास इस कार्यके लिए कितना फण्ड है और उसके कितने लाइफमेम्बर हैं यह हमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मालूम नहीं; परन्तु श्वेताम्बरसमाजमें शास्त्र-दानकी पद्धति इतनी अच्छी है कि बिना किसी अच्छे फण्डके भी सभा इस कार्यको अच्छी तरह चला सकती है। जितने ग्रन्थ हमारे पास समालोचनार्थ आये हैं प्रायः उन सबके ही मुख-पृष्ठोंपर लिखा है कि यह ग्रन्थ अमुक श्रावक या श्राविकाके दान-द्रव्यसे छपाया गया। देखिए कैसी अच्छी प्रथा है! इस प्रथाका फल आप देखेंगे कि कुछ ही वर्षोंमें हजारों ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओं या मुनियोंकी संख्या अधिक है और धार्मिक कार्योंमें ये ही उक्त सम्प्रदायके नेता समझे जाते हैं। इनके उपदेशों और शासनोंको लोग मानते भी बहुत हैं। एक तो शास्त्रदानकी प्राचीन प्रथा श्वेताम्बर समाजमें अभीतक अस्खलित रीतिसे चली आ रही है, दूसरे उनके कुछ साधुओंका ध्यान इस विषयकी ओर अधिक रहने लगा है। बहुत थोड़े प्रयत्नसे ही वे श्रावकोंको शास्त्रदानकी ओर प्रवृत्त कर सकते हैं। पर हमारे दिगम्बर सम्प्रदायकी अवस्था इससे भिन्न है। एक तो मुनियोंके अभावसे हमारे यहाँ शास्त्रदानकी प्रथाका ही प्रायः अभाव हो गया है, दूसरे जो थोड़े बहुत त्यागी ब्रह्मचारी हैं उनमें प्रायः अक्षरशत्रु ही अधिक हैं, अतः वे इस कार्यकी ओर दृष्टि ही क्यों देने लगे? रहे पण्डित लोग—जिनका कि समाजके ऊपर कुछ प्रभाव है—वे या तो ग्रन्थोंके छपानेको पाप समझते हैं, या कमसे कम अपने अन्नदाता सेठोंको खुश रखनेके लिए—छापेकी चर्चासे दूर रहना चाहते हैं। वे यदि चाहें तो प्रत्येक उत्सवमें, मन्दिरप्रतिष्ठामें, व्रतोद्यापनमें, तथा ब्याह-शादियोंकी खुशीमें शास्त्रदान करनेकी पद्धतिको जारी कर सकते हैं।

सभाके कार्यकर्त्ताओंको हम उनके इस पुण्यकार्यके उपलक्ष्यमें अनेकानेक धन्यवाद देते हैं और चाहते हैं कि वह इसी तरह अनवरत परिश्रम करके सारे श्वेताम्बर साहित्यको सर्वसाधारणके लिए सुलभ कर दे और अपने दिगम्बर-समाजसे आग्रह करते हैं कि वह भी इस ओर शीघ्र ध्यान दे और अपने सबसे बड़े कर्तव्य—ग्रन्थप्रकाशन—का पालन करे। स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजी जौहरीके स्मारकमें जो ग्रन्थमाला निकाली गई है उसका कार्य हमने उक्त आत्मानन्द-ग्रन्थमालाके ढंग पर ही शुरू किया है। यदि हमारा समाज इसकेद्वारा शास्त्रदान करनेकी ओर अनुरक्त होगा तो दिगम्बर साहित्यका बहुत कुछ उद्धार होने लगेगा। कलकत्तेकी सनातनजैनग्रन्थमालाकी ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। उसके द्वारा कई बड़े बड़े महत्त्वके ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यदि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाय तो उसके द्वारा भी बहुत काम हो सकता है।

आत्मानन्द ग्रन्थमालाके संपादकोंका ध्यान एक बातकी ओर आकर्षित करके हम इस लेखको समाप्त करेंगे। उसके जितने ग्रन्थ देखनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें एक पंचसूत्रको छोड़कर शेष सब ग्रन्थ विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके बादके हैं और उनमें भी अधिकांश पन्द्रहवीं शताब्दिके पीछेके रचे हुए हैं। हम यह मानते हैं कि पिछले साहित्यको प्रकाशमें लानेकी भी कम आवश्यकता नहीं है, तो भी अभी हमें सबसे अधिक उद्योग प्राचीन साहित्यको प्रकाशित करनेके लिए करना चाहिए। आशा है कि हमारी इस सूचना पर सभा विचार करेगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुनर्विवाह विधेय नहीं निषिद्ध है।

" जिस हेतुसे विवाहकी आवश्यकता बतलाई गई है उसकी पूर्तिके लिए यह आवश्यक है कि वह एक और अचल होना चाहिए। ये दोनों शर्तें इतनी अधिक ज़रूरी हैं कि वे उस जगह भी—जहाँ कि स्त्रपुरुषका अनुचित सम्बन्ध होता है—मालूम पड़ जाती हैं। प्रेममार्गमें अचल न रहनेसे, तथा प्रेमको अपने सुभीतेका एक साधारण साधन समझ लेनेसे सुखकी प्राप्ति हो सकती है, यह कहना व्यवहार तथा नीतिके सिद्धांतोंकी गहरी अज्ञानता प्रकट करना है। .....मनुष्यकी स्वाभाविक अस्थिरता और तरंगोंको नियममें रखनेके लिए आवश्यक है कि समाज उसके कार्य्योंमें हस्तक्षेप करे। यदि ऐसा न किया जायगा तो सुखके लिए एकके बाद एक व्यर्थ और दुःखकारक प्रयत्न करते करते मनुष्यका जीवन सर्वथा निष्फल और नीचा बन जायगा।"

—आगस्ट कान्टी।

जैनसमाजमें पुनर्विवाहका प्रश्न बहुत समयसे दबाया जा रहा था। आवश्यक होने पर भी एक पक्षके प्रभावके कारण इसकी चर्चा खुलकर नहीं होने पाती थी; परंतु देखते है कि अब इसकी चर्चा रुक नहीं सकती। चर्चाका न होना इस बातका प्रमाण नहीं है कि जैनसमाजमें इस प्रश्नका निर्णय हो चुका है अथवा सारा ही समाज पुनर्विवाहके विरुद्ध है, इस लिए आवश्यक जान पड़ता है कि इस प्रश्नका खूब खुलकर विचार किया जाय और इसकी अनुकूल और प्रतिकूल दोनों बाजुओंकी अच्छी तरह जाँच की जाय।

हितैषीके पिछले प्रथम अंकमें जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत बाड़ीलाल मोतीलालजी शाहने इस विषयमें अपने कुछ विचार प्रकट किये थे। आज हम स्वर्गीय पं० मणिलाल नभू भाई द्विवेदी बी.ए.के. विचार उनके एक पुराने लेख परसे यहाँ उद्धृत करते हैं। आशा है कि विचारशीलपाठक इनका गंभीरतापूर्वक अध्ययन करनेका कष्ट उठावेंगे। द्विवेदीजी गुजरातीके सुप्रसिद्ध विचारशील लेखक थे। वे पुराने आचार विचारोंके पोषक होनेपर भी नये विचारोंको सहन करनेवाले थे।

पुनर्विवाहका विषय बहुत ही विवादग्रस्त है। इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता है जब तक इन बातोंका मर्म अच्छी तरह न समझ लिया जाय:—१ संसारमें नीति और धर्मकी रचनाके सिद्धान्त किस प्रकारके हैं, २ संसारको सुखमय बनानेके लिए वे सिद्धान्त किस प्रकारके होने चाहिए ३ और हमारे देशके पूज्य स्त्रीपुरुषोंमें जो अनुकरणीय उत्साह, साहस, और शौर्य आदि गुण थे वे किस प्रकारके सिद्धान्तों पर चलनेसे उत्पन्न हुए थे।

जगतमें परंपरासे यही व्यवहार चला आ रहा है कि धर्मनीतिका सदुपदेश एक ओर तो कठिन, कष्टकर परन्तु शुभफलदायक मार्गकी योजना करता है और दूसरी ओर जिसे देख कर दया आ जाय ऐसे कष्टमें पड़ा हुआ मनुष्य उससे छुटकारा पानेका यत्न करता है। परन्तु विचार करनेसे मालूम होता है कि हमारी धर्मबुद्धि हमें जो ऊँचा स्वरूप—पवित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग—बतलाती है वही सच्चा मार्ग है और उसीसे समाजका कल्याण हो सकता है । यद्यपि बहुत-से उदाहरण ऐसे मिलते हैं जो इस नियमसे विरुद्ध जाते हैं, परंतु उन्हें अपवाद ही समझना चाहिए, और एक तरह वे मूल नियमको ही सबल करते हैं । एक साधारण उदाहरणसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी । धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि सत्य बोलना ही फलदायक है,और उसीसे सब सुखोंकी प्राप्ति होती है । जिन जिन देशोंमें इस तरहका दृढ़ उपदेश दिया गया है वहाँ वहाँ कहना चाहिए कि सद्विद्या और सद्विचारोंका खूब ही प्रचार हुआ है और इसके विरुद्ध जिस देशमें सत्य बोलनेके विषयमें पूरा जोर नहीं दिया गया है वह देश अधम स्थितिपर पहुँचा हुआ है । परन्तु ऐसा होनेपर भी क्या आप कह सकते हैं कि जहाँ सत्यका उपदेश दिया गया है वहाँ कभी असत्यके और जहाँ सत्यका उपदेश नहीं दिया गया है वहाँ कभी सत्यके छोटे मोटे उदाहरण नहीं मिल जाते हैं? परन्तु इससे क्या उन उन देशोंकी स्थापित रूढ़िको और उस रूढ़िके कारण प्राप्त हुई प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठाको हानि पहुँच सकती है ? कभी नहीं । इस सारे विवेचनका सारांश यह है कि किसी तात्कालिक तीव्र दुःखके कारण व्याकुल होकर भले ही हम चाहे जिस मार्गको पकड़ लेना उचित समझ लें, तथापि उस विषयका जो मूल सद्रूप है वही सच्चा मार्ग है और उसीके अनुसार चलनेसे संसार सुखमय बनेगा यह स्वीकार किये विना नहीं चल सकता ।

पुनर्विवाहके सूक्ष्म विषयमें भी उपर्युक्त नियमके अनुसार विचार करना चाहिए । स्त्रीको अपने पतिके अभावमें और पतिको अपनी स्त्रीके अभावमें फिरसे व्याह करना उचित है या अनुचित, यह बात तब समझमें आयगी जब इसके करनेमें जो हेतु है वह और इसका करना अनुचित समझनेमें जो सद्धर्म है वह, इन दोनोंकी तुलना की जायगी ।

यद्यपि विवाहका उद्देश्य भरणपोषणरूप स्वार्थका जान पड़ता है; परन्तु यह देखना चाहिए कि इस सम्बन्धमें सच्ची पवित्र गाँठ काहेकी है ? स्त्री पोषकशक्तिका स्वरूप है और पुरुष उत्पादक शक्तिका । पुरुष शरीरबलमें बढ़ा चढ़ा है और स्त्री प्रेमवृत्तिमें । प्रेमवृत्तिमें पुरुष उसकी बराबरी कदापि नहीं कर सकता और यही उसका ऐश्वर्य है जो उसे पूज्य बनाता है । प्राचीन आचार्योंने इसी लिए स्त्रियोंको पूज्य कहा है:—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥

अर्थात् प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली, महाभाग्यवाली और इसी कारण पूज्य, घरकी दीपिका रूप स्त्री और लक्ष्मी इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । और भी कहा है :—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सार्वस्तत्राफलाः क्रियाः ।

अर्थात् जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ ये नहीं पुजतीं वहाँ सारी क्रियायें निष्फल जाती हैं । याज्ञवल्क्य ऋषिने भी कहा है:—

भर्तृमातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वसुरदेवरैः ।
बन्धुभिश्च स्त्रियःपूज्या भूषणाच्छानाशनैः।

पति, भाई, पिता, जातिवाले, सास, ससुर, देवर और बन्धुओंको भूषण वस्त्र और भोजनादिसे स्त्रियोंकी सेवा करनी चाहिए । स्त्रियोंको पूज्य बनानेवाले इस प्रेममय ऐश्वर्यकी पुरुषको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतनी आवश्यकता है कि उसके बिना उसका जीवन कष्टमय है और उसके लिए मोक्षके मार्ग पर चलना कठिन है। इसी तरह पुरुषके बिना स्त्रीका निर्वाह होना कठिन है। तब स्त्री और पुरुष दोनोंके योगसे पूरा मनुष्य बनता है और उसी-का नाम विवाह है। विवाह केवल प्रेमकी गांठसे दृढ़ होता है। इस प्रेमके बलको दृढ़ करनेके लिए और उस बलसे उभयपक्षको जो मोक्षावधि महान् लाभ होता है उसकी प्राप्तिके लिए यह प्रेम होना कैसा चाहिए? हमारा मत है कि यह प्रेम एक ही और **अखण्ड** होना चाहिए; नहीं तो जिस अमूल्य फलकी आशा की जाती है उसे व्यर्थ ही समझना चाहिए। फ्रान्सका प्रसिद्ध विद्वान्, आगस्टकाम्टी भी यही कहता है कि "ऐसा प्रेम—इष्ट फल दे इस लिए एक, अविच्छिन्न और अखण्ड—मरणके बाद भी अखण्ड—होना चाहिए। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो फिर स्त्रीपुरुषके बीचमें—दोनोंमें पवित्र प्रेमका सम्बन्ध हो जानेके बाद—किसी दूसरेके लिए अवकाश ही कहाँ रहता है? ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामनेसे गुजरा करते हैं कि बहुतसे स्त्री-पुरुष जिन्हें ऐसे प्रेममय विवाहका अनुभव हो गया है—मरणजन्यवियोगके संकटसे जरा भी नहीं डरते हैं; इतना ही नहीं बल्कि वे दूसरा सम्बन्ध करना अपनी पहली पवित्र गाँठको दूषित करनेके बराबर समझते हैं। ऐसी अवस्थामें पुनर्विवाहके होनेमें—'प्रेम' तो हेतु भूत हो ही नहीं सकता; क्योंकि यह वृत्ति जहाँ एकबार लग जाती है वहाँसे दूसरी जगहके लिए कभी हिलती भी नहीं है। अब यह समझनेमें सरलता पड़ेगी कि प्रेमसम्पादित विवाह और प्रेमके सिवाय दूसरी वृत्तिसे सम्पादित हुआ पुनर्विवाह, इन दोनोंमें क्या अन्तर है और यह भी समझमें आ जायगा कि यदि विवाहका सम्बन्ध **एक** और **अखण्ड** रक्खा जाय जिससे कि पुनर्विवाहका मौका ही न आने पावे तो अच्छा है, और इसीसे यह भी सिद्ध हो जायगा कि पुनर्विवाह एक निषिद्ध आचार है।

जिन देशोंमें पुनर्विवाहका रिवाज लोक-सम्मत है वहाँ, और हिन्दुओंकी जिन जिन जातियोंमें यह जारी है उनमें भी, पुनर्विवाहका लाभ कितने स्त्रीपुरुष लेते हैं और उसे अच्छा समझते हैं, यदि इसकी गणना की जाय तो यह सिद्ध हुए बिना न रहेगा कि मनुष्य जातिकी स्वाभाविक वृत्ति ही प्रेमकी एकता पर दृढ़ है और उसीमें वह सुखका और महत्ताका अन्तिम परिणाम मान रही है। सुप्रसिद्ध बाबू प्रतापचन्द्र रायने अपने एक व्याख्यानमें कहा था कि "मनुष्यकी वृत्ति ही **एक** प्रेम करनेकी ओर बलवती जान पड़ती है। यदि कोई हिन्दुओंके लिए यह कहे कि इनमें प्रतिष्ठित समझे जाने-वाले ब्राह्मणोंका अनुकरण करके वैश्य शूद्रादि वर्ण पुनर्विवाहको बुरा समझने लगे हैं, तो इस बातको स्वीकारते हुए भी यह प्रश्न होता है कि जिन देशोंमें यह जायज है वहाँ क्यों बहुतसे स्त्री—पुरुष इसे पसन्द नहीं करते? उत्तर यही है कि जनसमाजका झुकाव प्रेमकी एकताकी ही ओर है। जैसे संसारके और और कामोंमें दृढ़-ताकी मुख्य आवश्यकता है उसी प्रकार प्रेम-सम्बन्धके व्यवहारमें भी है जिसके कि आधारसे सारे सुखोंकी मर्यादा बँधती है। यदि यह दृढ़ता न होगी तो मनुष्य पुनर्विवाहके कारण जो बार बार विवाहान्वेषणकी आदत पड़ जायगी उससे किसी एक स्थितिमें सुख न मान-कर, सारा जीवन सुख प्राप्त करनेकी एकके बाद एक परीक्षायें करनेमें ही व्यर्थ गवाँकर दुखी हुआ करेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब विवाहका बन्धन केवल प्रेमग्रान्थिसे होनेके लिए आवश्यक है कि दोनोंकी उम्र अच्छी हो (कमसे कम १६ और २५ वर्ष) दोनों शिक्षित हों, (वर्तमानमें स्त्रियोंके लिए जिस प्रकारकी शिक्षा दी जाती है उसकी अपेक्षा जुदे ही प्रकारकी शिक्षा उन्हें मिलना चाहिए, जिससे उनकी मानसिक और नैतिक शक्तियोंका विकास हो।) और दोनोंका विवाह मा बाप या गुरुजनोंकी योग्य आज्ञानुसार उन दोनोंकी पसन्दगीके द्वारा हुआ हो। इस प्रकारके विवाहको ही सच्चा प्रेमग्रन्थियुक्त विवाह समझना चाहिए।

विवाहका यही स्वरूप हमें मान्य है और इसी कारण हम पुनर्विवाहको बुरा समझते हैं। परन्तु हमारे मित्र कहते हैं कि आप जैसे बतलाते हैं वैसे विवाह आजकाल नहीं होते हैं। अपने रीतिरिवाज बिगड़ गये हैं, शिक्षा दी नहीं जाती, बाल्यविवाहका जोर है और पसन्दगीका तो कोई अभिप्राय भी नहीं समझता है; तब इन सारे दुष्टाचारोंके दुष्ट परिणामका निवारण कैसे किया जाय ? जिन लड़कियोंने अभी विवाहका अर्थ भी नहीं सुना समझा है, उन्हें क्या विना अपराध जीवन भर दुःखके गड्ढेमें ही डाले रखना चाहिए ? जिनके हृदय है, जो पराये दुःखोंका अनुभव कर सकते हैं, वे दयाशील सज्जन इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—"**विषस्य विषमौषधम्**—विषकी दवा विष ही है। इस दुःखसे मुक्त होनेके लिए यदि पुनर्विवाहकी आवश्यकता है, तो उसे अपने दुष्टाचारोंका परिणाम समझकर होने दो—उसमें रुकावट मत डालो।" हम भी ऐसे दयार्द्र सज्जनोंका सर्वांशतः अनुमोदन करते हैं; परन्तु साथ ही यह स्मरण रखनेकी प्रार्थना करते हैं कि हमारा वास्तविक मार्ग तो—जैसा पहले कहा जा चुका है—विवाह करके वैधव्यधर्म पालना ही है। पुनर्विवाह तो हमारी दुर्वृत्तिके कारण, हमारी दुर्बलताके कारण लाचार होकर ग्रहण किया हुआ—क्षमा करने योग्य और सबके सहन करने योग्य मार्ग है।

पुनर्विवाहको यदि कोई पाप माने, तो इसके लिए हम उसका आदर करेंगे। क्योंकि ऐसा माननेमें उसकी सद्बुद्धि—धर्मवृत्ति कारण है। परन्तु यदि कोई पुनर्विवाह करनेवालेको दुःख देनेके लिए या उसको जातिबहिष्कृत आदि करनेके लिए तैयार हो, तो इसे हम जरा भी सहन नहीं कर सकेंगे। जब तुम प्राचीन आर्यधर्मके सिद्धान्तोंके विरुद्ध दूसरे न जाने कितने आचारोंको सहन कर रहे हो, तब इस एकको भी क्यों चुपचाप सहन नहीं कर लेते हो ? परन्तु वे लोग जो इस काममें उचित सहनशीलता प्रकट नहीं कर सकते हैं अर्थात् पुनर्विवाहके रिवाजसे क्षुब्ध हो जाते हैं, उनकी अपेक्षा वे लोग और भी अधिक दोषके भागी हैं जो पुनर्विवाहादि करनेको ही सच्चे सुधारका शृंगार समझते हैं। जो आचार हमें पसन्द हैं उन्हीं आचारवाले लोगोंको अपने पास रखना और दूसरोंको न रखना, इसके लिए तो हर एक अदमी स्वतंत्र है, परन्तु प्राचीन सत्सिद्धान्तोंके नष्ट भ्रष्ट करनेका किसीको भी अधिकार नहीं है। हमारे सुधारक भाई जितना परिश्रम इस अनिष्ट आचारको प्रचलित करनेके लिए करते हैं, उतना ही यदि विवाहके वास्तविक स्वरूपको समझानेमें, विवाहके सामाजिक नियमोंमें परिवर्तन करानेमें, और धर्मकी महत्ता समझानेमें करते तो यह व्यर्थका विवाद कभीका मिट गया होता। पुनर्विवाहकी रीतिको उत्तेजन देते समय वे यह बात भूल जाते हैं कि इस प्रकारके उत्तेजनसे, वे अव्यवस्थित विवाह भी स्थायी हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जायँगे, जो कि अनेक अंशोंमें पुनर्विवाहको जन्म देनेवाले हैं और इससे दुःखकी परम्परा कभी बन्द न होगी। जिन कारणोंसे हम छोटी छोटी लड़कियोंकी दयायोग्य दशाको देखकर, विष की ओषधि विष समझकर, पुनर्विवाह करनेके लिए लाचार होते हैं उन कारणोंको किसी तरह सबल न होने देना चाहिए। हमारा आचार ऐसा न होना चाहिए जिससे कि वह बुरा रिवाज सदाके लिए गढ़ बाँधकर रह जाय कि जिसके कारण इस समय हम पुनर्विवाहके लिए लाचार हुए हैं। तात्कालिक दुःख दूर करनेके लिए लोगोंको अधिक सहनशीलता धारण करनेका उपदेश दो —ऐसा प्रयत्न करो जिससे वे पुनर्विवाहको सहन कर लें; परन्तु ऐसा प्रयत्न मत करो जिससे यह उपायरूप अनिष्ट आचार सदाके लिए हमारे गले बँध जाय। पुनर्विवाहको विधेय कोटिमें मत ले जाओ; परन्तु जिस निषेध कोटिमें वह है उसीमें रहने देकर उसे सिर्फ आपद्धर्म-लाचारीके कारण धारण किया हुआ रिवाज-समझो। सुधारकोंका काम है सद्विचारकी प्रवृत्ति करना। उसे छोड़कर अपनी शक्तियोंको दूसरी ओर-असद्विचारोंकी प्रवृत्तिकी ओर-लगाना हमें तो उचित नहीं जान पड़ता। अनाड़ी वैद्योंकी पद्धतिपर चलना अच्छा नहीं। शरीरमें जो दोष हो गये हैं उन्हें दूर करनेकी दवा न देकर केवल उस दोषके कारण उत्पन्न हुए तात्कालिक कष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करनेसे जिस प्रकार शरीरका स्थायी आरोग्य सिद्ध नहीं होता है, उसी प्रकार समाज—शरीरके विषयमें भी समझना चाहिए। तात्कालिक उपाय करनेसे जिस प्रकार कुछ आराम मिलता है, उसी प्रकार पुनर्विवाहसे मिलेगा—हम यह नहीं कहते कि न मिलेगा—और वह मिले तो अच्छा, ऐसा हम चाहते हैं; परन्तु मूल दोषके दूर करनेकी ओर जो ध्यान नहीं दिया जाता है उसे हम बहुत ही बुरा समझते हैं और इससे भी बुरी बात यह है जो यह निषिद्ध — आचार विधेयाचार समझा जाने लगा है और इस समय सुधारका शुभचिह्न गिना जाने लगा है।

सुधारकोंको चाहिए कि पुनर्विवाहका प्रचार करनेके पहले विवाहकी जो अव्यवस्था है उसे व्यवस्थित करनेकी कोशिश करें। जब तक जातियों और उपजातियोंके बन्धनके कारण स्त्रीपुरुष वर कन्या पसन्द करनेमें स्वतंत्र नहीं हैं तब तक विवाहपद्धति व्यवस्थित नहीं हो सकती। हमे यहाँ फिर कहना पड़ता है कि मतमतांतरोंके कारण जो वर्तमान जातिभेद हो गया है, उसे छोड़कर जब प्राचीन चातुर्वर्णिक धर्म स्थिर किया जायगा तभी हमारी अनेक सांसारिक अडचनें दूर हो सकेंगी, नहीं तो नहीं। सुधारकोंके द्वारा विवाहके शुभ विचारके साथ साथ जातिबन्धनके शुद्ध रूपका विवेचन होनेकी भी पूरी पूरी आवश्यकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्:—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्टमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००,५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डॉ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।=) है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र:—राजा साहबके चित्र संसारमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकर प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु.।

चित्रमय जापान—घर बैठे जपानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टिसौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानापान, मृत्यु, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण साहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध—छोटे २ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट, हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, आहिल्या, शाकुन्तला मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास गजेंद्रमोक्ष, हरिहरभेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनिका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७+५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड़ बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८+१० मूल्य प्रति संख्या एक आने।

लिथोके बढ़ियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र।) और चारों मिलकर ॥) नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६+२० मूल्य प्रति चित्र चार आना।

अन्य सामान—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजबादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरोंके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर—चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org